http://www.jainkosh.org

स्थितिमें वह अप्रमेय और अनर्थक्रियाकारी है। जब वह अवस्तु हो तो अर्थक्रियाकारी बन नहीं सकता। इन सब बातोंको अब अगली कारिकामें स्पष्ट करते हैं :

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् ।
ते च नित्ये विकार्यं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः ॥ ३८ ॥

व्यक्त महदादिकी व्यक्तिके कारणभूत प्रमाण और कारकोंको सर्वथा नित्य माननेपर विकार्यत्वका अभाव होनेसे महादि—यदि व्यक्त, महान, अहंकार आदिक प्रमाण और कारकोंसे प्रकट होता है यह माना जाता हो, जैसे कि इन्द्रिय के द्वारा इंद्रियके विषयभूत पदार्थ प्रकट होते हैं इसी प्रकार महान, अहंकार, शरीर आदिक व्यक्त पदार्थ प्रमाण और कारकोंसे व्यक्त होते हैं यह माना जाता हो तो सुनो प्रमाण और कारक तो शंकाकार द्वारा नित्य माने गए हैं, तो जब प्रमाण और कारक नित्य हैं तो विकार अब क्या हो सकेगा ? इस तरह हे प्रभो ! जो आपके शासनसे बहिर्गत हैं, एकांतवादी हैं उनके यहां कार्यकारण आदिक इन लौकिक तत्त्वोंकी सिद्धि नहीं हो सकती। यह एकांतवादी विचार करे कि जो प्रमाण होता है वह नित्य नहीं कहला सकता। प्रमाण स्वयं नित्यानित्यात्मक है। एकांततः प्रमाणकी नित्यता सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि यदि प्रमाणको नित्य मान लिया जाय तो प्रमाणके द्वारा की गई जो अभिव्यक्ति है अर्थात् प्रमाणके द्वारा जो कुछ प्रकट हुआ है ऐसा जो प्रमितिरूप व्यक्त, परिणति, महान, अहंकार आदिक व्यक्त स्वरूप हैं वे नित्य बन बैठेंगे। याने सदैव महान अहंकार आदिक एक प्रकारसे होते ही रहना चाहिए। क्योंकि अब ये अहंकार आदिक नित्य प्रमाणसे व्यक्त हुए हैं, तो प्रमाणको नित्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार कारकको नित्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कारकके द्वारा जो अभिव्यक्ति बनी है अर्थात् उत्पत्तिरूप अभिव्यक्ति हुई है वह भी निरन्तर होते रहना चाहिए। क्योंकि कारकको नित्य माना है तो नित्यसे जो बात प्रकट होगी वह सब भी निरन्तर होगी। यदि उसकी निरन्तरता नहीं है तो कारकको नित्य नहीं कहा जा सकेगा। और इसी प्रकार प्रमाण और कारकोंसे प्रकट हुआ हैं व्यक्त यह नहीं कहा जा सकता। जैसे कि एकान्तवादी यह दृष्टान्त यहाँ देकर उसे प्रमाण और कारकोंको व्यक्त बताते हैं, क्या दृष्टान्त देकर कि जैसे इन्द्रियके द्वारा विषयभूत पदार्थ व्यक्त होते हैं इसी प्रकार प्रमाण और कारकोंके द्वारा महान अहंकार आदिक तत्त्व व्यक्त होते हैं। यों प्रमाण और कारकों से उनकी अभिव्यक्ति सिद्ध नहीं हो सकती, क्योंकि प्रमाण और कारकोंसे वे अहंकार व्यक्त हुए हैं तो इसके मायने यह हुआ कि पहिले यह व्यक्त न था, उनके व्यंजकके व्यापारसे अभिव्यक्ति प्रतीत हुई है, प्रकट हुआ है कुछ तो यह मानना होगा कि वह पहिले प्रकट न था और जैसे प्रकट करने वाले कारणसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणमें कुछ व्यापार बना है। तब ही तो वह प्रकट हुआ है, तो प्रकट होने वाले अहंकार आदिकका व्यंजक कारण है कारक तो यह सिद्ध होता है कि उस कारकमें कुछ व्यापार बना और कारकमें जब व्यापार बना तो उसका तात्पर्य यह हुआ कि वह अनित्य है। यों कारकको भी नित्य नहीं कहा जा सकता।

सर्वथा नित्यरूपसे भावकी व्यवस्था न होनेसे व्यक्तमें कथंचित् अनित्यरूप ही प्रमाण कारकोंके व्यापारके विषयभूतपनेकी सिद्धि—यहां शंकाकार कहता है कि तथ्य यह है कि प्रमाण और कारक व्यवस्थित भावको ही प्रकट किया करते हैं। अर्थात् जो पहिलेसे है नियत है ऐसे ही पदार्थको प्रमाण और कारक प्रकट करता है। जैसे कि चक्षु आदिक इंद्रियां अपने विषयको प्रकट करती है तो वह विषय व्यवस्थित ही तो है, नियत है और पहिलेसे सत् है, उसको ही तो आंखों से देखा जाता है अन्य इंद्रियसे जिसका जो विषय है वह किया जाता है तो जैसे चक्षु आदिक इंद्रियाँ अपने विषयको ही प्रकट करती हैं उसी प्रकार प्रमाण और कारक भी व्यवस्थित ही भावको प्रकट किया करता है, इस कारणसे किसी भी प्रकारकी विरुद्धता नहीं होती। उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि जो सर्वथा नित्य हो, द्रव्यसे भी नित्य है जैसे, वैसे ही पर्याय से भी नित्य हो जाय तो सर्वथा नित्यरूपता होनेसे वहाँ कोई कार्य नहीं बन सकता और पदार्थ सर्वथा नित्यरूप व्यवस्थित है नहीं। अतः कथंचित् नित्यके ही प्रमाण और कारकके व्यापारकी विशेषता हो सकती है। प्रमाण और कारकोंने जिसको विषय किया है, वहाँ अवश्य ही पूर्वरूपका परिहार और उत्तररूपकी अभिव्यक्ति हुई है, चक्षु आदिक इंद्रियके द्वारा उनका विषयभूत पदार्थ प्रकट हुआ है। यह जो दृष्टांत दिया गया है उस दृष्टांतमें भी पूर्वस्वभावका परिहार और उत्तरस्वभावका अभिव्यक्ति सिद्ध होती है। चक्षु आदिक इंद्रियाँ अपने विषय रूप आदिकको किस तरहसे प्रकट करते हैं कि उन रूपादिकमें पहिले अव्यक्त स्वभाव था। जब तक इंद्रिय द्वारा उस पदार्थको नहीं देखा तब तक तो वह पदार्थ व्यक्त न था। जब आँखें खोलकर पदार्थको देखा तो उस समय पदार्थोंके अव्यक्त स्वभावका परिहार हुआ और व्यक्त का ग्रहण हुआ। अब वह पदार्थ व्यक्त स्वभावमें आया, उसका ग्रहण हुआ। इस तरहसे इन इंद्रियोंके द्वारा पदार्थ व्यक्त हुआ करते हैं। जैसे जहाँ घट पट आदिक बहुत सी चीजें पड़ी हैं, उनके ऊपर पर्दा डाल दिया गया। अब पर्दा जब उठाया तो वे पदार्थ प्रकट हो गए, तो वहाँ भी यही कहा जा सकेगा कि जिस समय पर्दा पड़ा था उस समय सारे पदार्थ अव्यक्त स्वभावमें थे याने प्रकट नहीं हो रहे थे। और जब पर्दा उठा दिया गया तो वे ही पदार्थ अब व्यक्त स्वभावमें आ गए, पदार्थोंने प्रकट स्वभावको ग्रहण कर लिया तो इस तरह उन पदार्थोंमें भी तो पूर्वस्थितिका परिहार और उत्तरस्थितिका ग्रहण हो रहा है। ऐसे ही इन चक्षु आदिक इंद्रियके द्वारा रूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिक पदार्थ प्रकट होते हैं। तो वहाँ पहिले तो था अनभिव्यक्ति स्वभाव उसका तो हुआ परित्याग और अभिव्यक्त स्वभावका ग्रहण हुआ। इस ढङ्गमें इन चक्षु आदिक इंद्रियोंने रूपादिकको प्रकट किया है। सो अब इंद्रियमें भी देखो कि ये इंद्रियाँ पहिले अभिव्यञ्जक थीं अर्थात् पदार्थको ग्रहण नहीं कर रही थीं तो उस समय उन इंद्रियोंमें अनभिव्यंजक स्वभाव था, अब उस स्वभावका त्याग किया और व्यक्त करनेका स्वभाव स्वीकार किया तो इस तरह इन चक्षु इंद्रियमें यह व्यञ्जक है विषयोंका इस तरह व्यपदेश बनता है। जैसे आँखें मीचे हैं तब पदार्थ प्रकट नहीं हो रहे हैं, आँखें खोलीं कि पदार्थ प्रकट दिखने लगे। तो इस स्थितिमें पदार्थोंमें भी पूर्वस्वभावका त्याग उत्तरस्वभावका ग्रहण हुआ है और इन आँखोंमें भी पूर्वस्वभावका त्याग और उत्तर स्वभाव ा ग्रहण हुआ है। पदार्थमें तो अव्यक्तस्वभावका त्याग हुआ और व्यक्त स्वभावका ग्रहण हुआ। और इन आँखोंमें व्यक्त न करनेका स्वभाव तो अलग हुआ और व्यक्त करनेका स्वभाव प्रकट हुआ तो इस उत्पादव्ययको कहाँ हटा सकते हैं?

पदार्थमें अपूर्वका आविर्भाव अनिवार्य अङ्गीकार—जैसे इन इंद्रियोंमें ये इंद्रियाँ व्यञ्जक हैं, यह व्यपदेश बनता है। इस प्रकार प्रमाण और कारक आदिकको सांख्यदर्शनने माना तो नहीं, अगर इस तरह मान लिया जाय तो प्रधान, प्रकृति, प्रमाण, कारक ये सब कथंचित् अनित्य सिद्ध हो जायेंगे। पर इन सबको इस सिद्धांत ने सर्वथा नित्य माना है। यदि प्रमाण और कारकोंके द्वारा विषय विशेषका जानना मान लिया जाय तो प्रमाण कारक तो है शाश्वत सदा रहने वाला, तब व्यक्तिके लिए फिर किया क्या, यह कुछ नहीं हम देखते हैं। यदि कथंचित् अपूर्वकी उत्पत्ति मान ली जाती है तब तो सब तत्त्व ठीक बन जाते हैं लेकिन ऐसा सांख्यसिद्धान्ती कैसे मान सकेंगे? यदि अपूर्वकी उत्पत्ति मान ली जाय तो नित्यपनेका एकान्त नहीं हो सकता, कोई भी पदार्थ यदि वह उत्पन्न होता है तो यह मानना पड़ेगा कि पहिले न था वह उत्पन्न हुआ है, तो उसमें सर्वथा नित्यपनेका एकान्त न रहेगा। यदि पदार्थका प्रकट होना भी मानो कि पदार्थ सब पहिलेसे मौजूद हैं, केवल उनको प्रकट किया जाता है, जैसे बहुत सी चीजें अटपट कमरेमें रखी हैं एक तरफ, उसपर कपड़ा डाल दिया, अब जब कपड़ा हटा दिया गया तो सभी चीजें दीखने लगीं। तो कहीं वे पदार्थ उत्पन्न तो नहीं हो गए, किन्तु प्रकट हो गए, यदि प्रकट होना मानो तो भी कुछ तो मानना ही पडेगा। जब आवरणसे ढके वे पदार्थ उस समयके पदार्थ अप्रकटरूपको लिए हुए थे, जब पर्दा अलग हो गया तो वे पदार्थ प्रकटरूपताको लिए हुए थे, जब पर्दा अलग हो गया सो वे पदार्थ प्रकटरूपताको ग्रहण करने लगे, तो किसी तरह माननेपर भी अपूर्व बातकी उत्पत्ति माननी ही पड़ेगी। और जब अपूर्वकी उत्पत्ति मानी है, तो नित्यत्वके एकान्तका विरोध हो जाता है। सो हे प्रभो! तुम्हारा शासन अनेकान्त-वादियोंका शासन है। इस शासनसे जो बहिर्गत हैं उनके सिद्धान्तमें न तो विषय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषका ज्ञान सिद्ध हो सकता है, न बात करनेकी अभिलाषा सिद्ध हो सकती है और न ज्ञानमें प्रवृत्ति बन सकती हैं, क्योंकि यह सब होनेके लिए कथंचित् अपूर्वता माननी पड़ेगी। तो जब अपूर्वता मान ली जाती है, कुछ उत्पन्न होता है तो नई बात हुई है, कुछ प्रकट हुआ है तो वहाँ नई ही स्थिति बनी है। ऐसी बात अगर मान ली जाती है तो वहाँ नित्यत्वका एकान्त फिर नहीं रह सकता और अपूर्वके अभावमें विकारी भी नहीं बन सकता कि कुछ बात बनी है। और अपूर्वके प्रकाश माने बिना कोई चीज व्यंग्य भी नहीं बन सकती कि पहिले अप्रकट थीं, अब प्रकट हो गई। तो प्रकट मानो या अप्रकट होना मानो दोनों ही स्थितियोंमें अपूर्व ज्ञानकी उत्पत्ति माननी ही पड़ेगी।

नित्यत्वैकान्तमें कार्यकारणभाव आदिके मन्तव्यकी चर्चा—शंकाकार कहता है कि नित्यत्वके पक्षमें भी कार्यकारणका, विकार्य विकारकका, व्यञ्ज्यव्यञ्जक होनेका कोई विरोध नहीं है, क्योंकि तुम्हारे सिद्धांतमें कार्यकारणभाव माना गया है। सांख्य सिद्धान्तमें महत अहंकार आदिकको कार्य कहा है और प्रधानको कारण कहा है तो जब कारण कार्यभाव माना गया है तो कोई व्यंग्य हो जाय, कार्य हो जाय, विकार्य हो जाय इसमें किसी प्रकार विरोध नहीं है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह सिद्धान्त बिना विचारे ही कह दिया गया है। यदि कारणकार्यभाव मानते हैं तो यह बताओ कि वह कार्य सत्‌रूप है या असत्‌रूप है। सत् और असत् इन दोको छोड़कर तीसरा तो कोई प्रकार है नहीं। तो वह कार्य सत्‌रूप है या असत्‌रूप ? इन दोनों विकल्पोंके माननेपर क्या दोष आता है सो बताते हैं।

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुंवन्नोत्पत्तुमर्हति।
परिणामप्रक्लृप्तिश्च नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥३९॥

सर्वथा सत्में कार्यत्वकी अनुपपत्ति—यदि वह कार्य सर्वथा सत्‌रूप है तो जैसे पुरुषके चिद्‌ब्रह्मकी उत्पत्ति नहीं मानी गई, क्योंकि वह सर्वथा नित्य है, तो यों ही कार्य भी जो सर्वथा सत् है तो उसकी उत्पत्ति नहीं बन सकती। उत्पत्ति तो उस हीके बनेगी जो पहिले किसी रूपसे असत् हो, फिर उसका कोई रूप बन जाय, पर जो कार्य सर्वथा सत्‌रूप ही माना गया उसकी उत्पत्ति नहीं बन सकती। जैसे कि पुरुष ब्रह्मकी उत्पत्ति नहीं माना और होता है उसमें परिणाम तो उसमें जो परिणाम की कल्पना है कार्यमें तो यह तो माना ही गया है कि कोई परिणमन हुआ, तरंग हुई तो यह परिणामकी कल्पना नित्यत्वके एकान्तको बाधित कर देती है। जो सर्वथा सत् होता है उसमें कार्यपना नहीं होता चेतनकी तरह। यहां एक अनुमान प्रयोग किया जा रहा है कि सर्वथा सत् पदार्थका कार्यपना नहीं बनता चेतनकी तरह, चेतन सर्वथा सत् है तो उसे कार्य नहीं माना गया। चेतन कार्य मान लिया जायगा तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चैतन्यस्वरूप ही तो पुरुष है। उस पुरुषमें भी कार्यपनेका प्रसंग आ जायगा। यदि चेतन कार्य है तो चेतन्यस्वरूप आत्मा भी कार्य बन बैठेगा। और जब कि चेतन कार्य नहीं है तो महत् आदिकमें भी कार्यपना नहीं सिद्ध हो सकता, जिससे कि यह प्रसंग लाया जाय कि महत आदिक सत् ही हैं और कार्यभूत हैं, तो जो सर्वथा सत् है वह कार्य नही बन सकता। यहां सांख्य सिद्धांत द्वारा उपालम्भ निराकरणके लिए जो कार्यकारणभावकी कल्पना की है उसका विचार चल रहा है। वह कार्य सर्वथा सत् है या असत् है ऐसे दो विकल्प पूछे गए थे जिसमें सर्वथा सत् हो तो उसकी सिद्धि नहीं है।

सर्वथा असत्के कार्यत्वकी अनुपपत्ति—यह भी न कहा जा सकेगा कि सर्वथा असत्के कार्यपना होता है याने उस असत् महत् आदिकमें कार्यपना सिद्ध होता है। यों माननेपर शंकाकारके सिद्धांतका विरोध आयगा। माना गया सांख्य सिद्धांतमें सत्के कार्यपना माना गया है। शंकाकारके सिद्धांतका वचन है कि जो असत् हो उसके कार्यपना बन नही सकता। जैसे आकाशपुष्प सर्वथा असत् है। तो उसमें क्या कार्यपना बताया जा सकता है, स्वयं सांख्य सिद्धांतमें इसकी सिद्धिमें पांच हेतु कहे गये हैं। प्रथम हेतुमें कहा गया है कि कार्य सद्भूत होता है अर्थात सदा रहता है, यदि कार्य सद्भूत न हो तो वह असत हो गया और जो असत् है वह कभी किया नहीं जा सकता। जैसे आकाशपुष्प असत् है तो उसे किया नहीं जाता। दूसरा कारण यह है कि यदि कार्य सर्वथा असत् हो तो उपादानका ग्रहण नहीं हो सकता। घडेको व्यक्त करनेकी इच्छा रखने वाला कुम्हार मिट्टीको ही ग्रहण करता है कंकड़ पत्थर रुई आदिक नहीं। यों उपादानको ही कोई ग्रहण करता है तो उससे यह सिद्ध है कि वहाँ कोई सद्भूत है और नियत है तभी तो इसको उपादानको ग्रहण किया। तो कार्यसद्भूत है, यह सिद्ध करनेमें दो हेतु तो बताये, अब तीसरा हेतु जो सांख्य सिद्धान्तमें कहा है सो सुनो! उनका कहना है कि कार्य यदि असद्भूत हो तो सर्व कार्य हो जाना चाहिए, क्योंकि असत हो रहा है ना। तो जो किया जा सकता है। वहां मिट्टीमें घड़ा मौजूद है, शक्य है, इसलिए उसे किया जायगा। कपड़ा शक्य नहीं है वहां। तो मृतपिण्डसे कपड़ा तो न बन जायगा। पांचवा हेतु कहा है कि कारणभाव होनेसे सत ही कार्य है यह सिद्ध होता है। यदि असत कार्य बन जाता कारणकी व्यवस्था असंभव थी। तो इन हेतुवोंसे सिद्ध किया है कि कार्य सद्भूत है तब यहां यह कहा जा सकेगा कि महत अहंकार आदिक सत है और ऐसे सतको ही कार्य कहा गया है। असतको कार्य माननेपर विरोध आता ही है सो यहाँ तक स्वयं शंकाकारके सिद्धांतसे बता दिया गया कि असतके कार्यपना नहीं बनता। तो द्वितीय पक्षकी बात कही जा रही है कि यदि यह माना जाय कि असतके कार्यपना हो जायगा तो सुनिए जो सर्वथा असत है वह किसी प्रकार उत्पन्न भी नहीं हो सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे आकाशपुष्प, वह है ही नहीं, तो किस विधिसे उसे उत्पन्न किया जा सकेगा ? इस अनुमानसे भी असत्कार्यत्व बाधित है। और, फिर यहां अटपटा सा भी लग रहा कि सर्वथा असत है और फिर भी कहा जाय कि यह किसीका कार्य है तो यों स्व-वचनबाधित भी बात है। इससे सिद्ध है कि कार्य सर्वथा सद्भूत हो तो भी उत्पन्न नहीं हो सकता। और, सर्वथा असद्भूत हो तो भी उत्पन्न नहीं हो सकता और सत्त्व असत्त्व इन दो विकल्पोंको छोड़कर अन्य किसी प्रकारका एकांत बन नहीं सकता।

कार्य शब्द न कह कर विवर्त शब्दसे वस्तुरूप बतानेमें भी स्याद्वाद-नीतिके आश्रयणकी सिद्धि—यहाँ शंकाकार कहता है कि इसी लिए तो यह मान लेना चाहिए कि कुछ भी कार्य है ही नहीं। जब कि सर्वथा सत्में कार्यपना नहीं बनता सर्वथा असत्में कार्यपना नहीं बनता तब तो यह मान लेना चाहिए कि कुछ कार्य ही नहीं होता है, केवल प्रधानकी तरंग है। यही एकान्त स्वीकार करना चाहिए। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि यह एकान्त भी वहाँ सम्भव नहीं है और विवर्त माना है प्रधानका तो विवर्त आदिक किन्ही शब्दोंसे कहो, वहां यह बात पायी ही जायगी कि पूर्व स्वभावका प्रध्वंस होता है और उत्तर स्वभावकी उत्पत्ति होती है, ऐसा ही माननेपर परिणाम सिद्ध होता है। और जब परिणमन इस तरह सिद्ध हो गया तो वहाँ अनेकान्तका ही आलम्बन लेना होता है। अनेकान्त शासनमें भी यह कहा गया है कि सर्वथा सत् हो तो उत्पत्ति नहीं हो सकती सर्वथा असत् हो तो उत्पत्ति नहीं हो सकती। द्रव्य दृष्टिसे चूंकि उसका उत्पादक कारणभूत द्रव्य है इस कारण सत् है और यदि सत्में ही कार्यपना बनता है और चूंकि जो कार्य प्रकट हुआ है वह प्रकट होनेसे पहिले असत् है। तभी उसकी उत्पत्ति या विकाश हो सकता है। जब यों ही यहाँ मानना पड़ा तब अनेकान्तका आश्रय लेने की बात सिद्ध हो जाती है। और, इस प्रकार यह भी सिद्ध हुआ कि यहाँ प्रधान महत् अहंकार आदिक व्यक्तियोंसे तिरोभूत हो जाता है। तब महान अहंकार आदिक परि-णमन हुए हैं तो जो मूल प्रधान है वह तिरोहित हो गया। वह कहाँ प्रकट हुआ सो प्रधानके नित्यपनेका प्रतिषेध हो गया। तब महान अहंकार आदिक व्यक्त कार्य हो गए तो प्रधान अब नित्य कहाँ रहा ? वही प्रधान इस समय अहंकार आदिक पर्यायोंरूपमें आ गया, और दूसरी भी बात सुनो कि व्यक्तिसे तिरोभूत होकर भी वह प्रधान है, क्योंकि विनाशका प्रतिषेध है। जो है उसका समूल नाश होता नहीं। तो यों अब अनेकान्त वचन ही तो कहना पड़ा। जैसे कोई अंधा सर्प हो तो यहाँ वहाँ कहीं फिरे, आखिर बिलमें प्रवेश करेगा तब ही उसकी रक्षा है इसी तरह एकान्त वचनोंको भी कहा जाय किन्तु जब अनेकान्त पद्धति अपनाई जायगी तब ही सत्य वार्ता सिद्ध हो सकेगी। तो यहाँ जिसका मंतव्य है कि सर्वथा नित्य वस्तु है तो वहां अनित्यत्वकी अपेक्षा न रही जिसका मन्तव्य है वस्तु सर्वथा अनित्य है वहाँ नित्यत्वकी अपेक्षा न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रही। यों प्रतिपक्षकी अपेक्षा बिना स्वपक्ष सिद्धि न हो सकेगी। अतः एकान्तकी अपेक्षा न रखकर जैसे कि पदार्थ पाये जाते हैं उस प्रकार स्वीकार किया जाना चाहिये। इस तरह नित्य एकान्तवादियोंके यहाँ उक्त दोष तो बताया गया। अब और भी दोष सुनो !

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावः फलं कुतः ।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायकः ॥ ४० ॥

पाप पुण्य, लोक परलोक शुभ अशुभादि सर्व चेष्टाओंमें दूषण—हे प्रभो ! जो आपके शासनसे बहिर्भूत हैं, जिनके आप नायक नहीं हो, ऐसे एकान्त दार्शनिकोंके पुण्यपाप क्रिया नहीं बन सकती, परलोक होना नहीं बन सकता। उसका फल भी नहीं हो सकता और न बंध मोक्षकी व्यवस्था बन सकती है। पुण्य पाप क्रिया कहलाती है शुभ और अशुभ मन वचन कायकी चेष्टा। शुभ मन, वचन, कायकी चेष्टा पुण्य क्रिया कहलाती है अशुभ मन, वचन, कायकी चेष्टा पाप क्रिया कहलाती है। सो ये दोनों प्रकारकी क्रियायें नित्यत्वैकान्तमें नहीं हो सकती हैं क्योंकि वह प्रधान सर्वथा नित्य माना गया है, जैसे कि पुरुष चिद् ब्रह्म सर्वथा नित्य है तो उसमें कोई शुभ अशुभ चेष्टायें स्वीकार नहीं की तो ऐसे ही प्रधान भी तो नित्य माना गया है फिर उसमें शुभ अशुभ कायादिक चेष्टायें कैसे सम्भव होगी ? और जब पुण्य पाप क्रिया सम्भव नहीं है अथवा शुभ अशुभ चेष्टायें वहाँ सिद्ध नहीं होती हैं तो शुभ अशुभ परिणामोंका अभाव होनेसे अर्थात् पुण्यका कारण और पापका कारण न कहलानेसे अब पुण्य और पाप दोनों ही सिद्ध नहीं हो सकते। तो पुण्य पापकी उत्पत्ति बन नहीं सकती क्योंकि कारणका अभाव होनेपर कार्यका उदय नहीं हुआ करता। यहाँ कार्य बताया जा रहा है पुण्य पापकी क्रिया और उसका कारण है शुभ अशुभ चेष्टायें। तो जब शुभ अशुभ चेष्टायें सिद्ध नहीं होती क्योंकि प्रधान भी नित्य है पुरुष भी नित्य है, पुरुषमें तो चेष्टायें मानी नहीं गई, प्रधानमें मानी जा रही तो सर्वथा नित्य होनेसे प्रधानमें भी चेष्टायें सिद्ध नहीं हो सकती। तो यों कारणका अभाव होनेपर पाप क्रिया रूप कार्य नहीं बन सकता। अन्य जन्ममें जीव जो जन्मान्तरको धारण करता यह बात पुण्य पापके अभावमें नहीं होती, इसी प्रकार उसका फल सुख आदिका अभाव यह भी नहीं हो सकता। तो जब फल भी न रहा तो बंध और मोक्ष नहीं सिद्ध होते, क्योंकि बंध किसका फल है। पुण्य पाप कर्म हो तब तो बंध बने और उनका उदय हो तब फल बने।

नैरात्मदर्शनकी तरह नित्यत्वैकान्तदर्शनकी अनाश्रयणीयता—जब न पुण्य-पाप क्रिया है, न परलोक है और न उसके सुखदुःख आदिक अनुभवन रूप फल हैं तो बंध किसका नाम और जब बंध नहीं है तो मोक्ष किसका नाम ? मोक्ष कहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसे हैं कि जहाँ बंधसे छुटकारा हो जाय । यों कोई तत्त्व नहीं सिद्ध होता । इसलिए नित्यत्व सिद्धान्तका मंतव्य जो बुद्धिमान जन हैं उनके स्वीकार करने योग्य नहीं है । क्योंकि वहाँ पुण्य-पाप, बंध-मोक्ष ये सब विकल्प सिद्ध नहीं हो सकते । जैसे कि नैरात्म्य सिद्धान्त जो आत्माको मानते ही नहीं हैं उनके यहाँ पुण्य पाप, परलोक आदिक सिद्ध नहीं होते । तो ऐसे ही इस नित्यत्व एकान्तके मंतव्यमें भी ये सब काम सिद्ध नहीं हो सकते और इसी नित्यत्व एकान्तमें ही क्यों, किसी भी एकान्तमें ये पुण्य पाप परलोक आदिक सिद्ध नहीं होते, यह बात पहिली कारिकामें ही अच्छी तरह समर्थित की गई है कि एकान्तवादमें पुण्य पाप आदिक कुछ भी सिद्ध नही हो सकते । क्षणिकवादी दार्शनिक कहते हैं कि यह सच ही कहा है नित्यत्वके एकान्तमें अनेक दूषण आते हैं लेकिन क्षणक्षयका जो एकान्त है उसमें तो दूषण आता ही नहीं और अनुभव सिद्ध भी बात है, प्रमाणसिद्ध है क्षणक्षयका एकान्त, उसे तो स्वीकार कर लेना चाहिए, ऐसा कहने वाले क्षणिकवादियोंके प्रति आचार्य समतभद्र कहते हैं :

क्षणिकैकान्तपक्षेपि प्रेत्यभावाद्यसंभवः ।
प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भः कुतः फलम् ॥४१॥

क्षणिकैकांत पक्षमें प्रेत्यभाव कार्यारम्भ, फल आदिके अभावका प्रसंग — क्षणिक एकांतके आग्रहमें भी परलोकादिक असम्भव हो जाते हैं, क्योंकि वहां प्रत्यभिज्ञान स्मृति आदिक ज्ञान नहीं तो वहां न कार्य आरम्भ हो सकता और न उसका फल हो सकता । क्षणिक एकांत पक्ष अर्थात् सभी वस्तु एक समय रहती है अगले समयमें उसका मूलतः नाश हो जाता है । ऐसे मंतव्यके पक्षमें ज्ञानका कार्यारम्भ नहीं हो सकता । क्योंकि इस क्षणिक एकान्तमें प्रत्यभिज्ञान स्मृति, इच्छा आदिक कुछ भी कार्य नहीं हो सकते, प्रत्यभिज्ञान आदिक तभी तो होंगे जब कि कोई एक आत्मा हो । उसीने पहिले अनुभव किया हो । अब स्मरण हो रहा हो तो ये प्रत्यभिज्ञान स्मरण आदिक होते हैं अन्यथा नहीं । जैसे कि भिन्न भिन्न आत्माओंके ज्ञान क्षणमें प्रत्यभिज्ञान आदिक तो नहीं होते । हमने कोई वस्तु अनुभूत की तो दूसरा कोई पुरुष उसका स्मरण करले ऐसा तो नहीं हो सकता । तो जैसे भिन्न-भिन्न आत्माओं के ज्ञानमें एकका दूसरेको स्मरण नहीं इसी तरह एक देहमें भी उत्पन्न होने वाले अनेक ज्ञानक्षणमें भी स्मरण आदिक नहीं हो सकते, क्योंकि उन्हें भी तो भिन्न भिन्न ही माना गया है । जब तक जानने वाला आत्मा एक न माना जाय तब तक प्रत्यभिज्ञान आदिक नहीं बनता । शंकाकार कहता है कि संतान कार्यका आरंभ कर देगा । ज्ञानक्षणोंमें जो एक धारा चल रही है संतान वह कार्यको कर देगा । इसके उत्तरमें कहते कि यह कथन भी मिथ्या है । क्योंकि संतान अगर कार्यको कर दे ऐसा मानते हो तब संतान अवस्तु न रहेगी, वह वास्तविक चीज बन जायगी ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि जो कार्यको आरम्भ करे वह तो वस्तु हो गया, अवस्तु नहीं हो सकता। अवस्तु जैसे आकाश पुष्प आदिक है वह कार्यको तो नहीं कर सकता। तो जिसे भी कार्यको करने वाला मानोगे वह वस्तु बन जायगा। और जो ज्ञानक्षण है वह अवस्तु बन जायगा, क्योंकि ज्ञानक्षणोंने कार्यका आरम्भ नहीं किया किन्तु उनकी संतानने किया। तो अब यहां दोनों तरह विपरीत सिद्ध हो जायगा। संतान तो हो जायगा वस्तु जो क्षणिकवादियोंको इष्ट नहीं है और ज्ञानक्षण हो जायगा अवस्तु जो कि क्षणिकवादियोंको इष्ट नहीं है। क्षणिकवाद सिद्धान्तका प्रति समयका जो क्षण है, परिणमन है वही मात्र वस्तु है। न तो संतान वस्तु है और ज्ञानक्षण स्वलक्षण अवस्तु नहीं है लेकिन संतान कार्यको आरम्भ करे इस मंतव्यमें संतान अवस्तु बन जायगा और ज्ञानक्षण अवस्तु हो जायगा।

कार्यारम्भके अभावमें पुण्यपाप फल बंध मोक्षकी असिद्धि होनेके कारण क्षणिकैकान्तपक्षकी अहितमयता—जब उक्त प्रकार कार्यका आरम्भ न बन सका तो पुण्य पाप भी नहीं बन सकते, क्योंकि जहां कर्म नहीं, किया नहीं वहां पुण्य अथवा पाप कहांसे हो जायगा। और जब पुण्य पाप न बने तो परलोक न बनेगा। बंध और मोक्ष भी न बनेगा। क्योंकि पुण्य पापका ही नाम बंध है, पुण्य पाप है नहीं, तो बताओ फल कहां लग जायगा ? जब बन्धन सिद्ध नहीं है तो मोक्ष कैसे सिद्ध होगा ? इस प्रकार क्षणिकवादियोंका जो एकांत सिद्धांत है वह अहितरूप है उसमें जीवको हितकी कोई बात नहीं मिल सकती। क्योंकि वहां परलोक आदिक सम्भव हो जाते हैं जैसे कि शून्य एकांतवाद, इसमें परलोक नहीं माना गया तो शून्य एकांतवादसे क्या हित होगा ? तो जहाँ परलोकादिक सिद्ध नहीं होते, वे साधन अहितरूप होते हैं अथवा क्षणिकवादियोंने जैसा कि नित्य एकांतमें अहित माना है क्यों माना है कि परलोकादिक नहीं बनता, तो जब परलोकादिक क्षणिक एकांतमें भी नहीं बन रहे तो वह दर्शन हितरूप कैसे होगा ? जैसे सर्वथा शून्यवादमें और नित्यत्व एकांतमें परलोकादिक सम्भव नहीं है इसी प्रकार क्षणिक एकांतमें भी परलोकादिक सम्भव नहीं है। इस अनुमान प्रयोगमें जो दृष्टान्त दिया गया है, दृष्टांत दिए गए यहां दो एक शून्य एकांत और एक नित्यत्व एकांत तो दोनों ही दृष्टांतोंमें साधन पाया जा रहा है अर्थात् परलोकका अभाव सिद्ध हो रहा अतएव दृष्टांत साधन धर्मसे रहित नहीं है और, विवेकीजनने उन दोनों एकांतोंका शून्य एकांत और नित्यत्व एकांतका आश्रय कहना हितरूपसे नहीं माना, इस कारण दृष्टान्त सही वही कहलाता है जहां साध्य साधन पाये जायें। तो इस दृष्टांतमें साध्य साधन बराबर मिल रहे हैं दृष्टांत सही है और उस दृष्टांतसे जो सिद्ध करना है, दृष्टांतमें वह बात सिद्ध हो जाती है।

निरन्वय क्षणिकवादमें वासनाकी अनुपपत्ति—अब यहां शंकाकार कहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कि यद्यपि ज्ञानक्षण क्षणिक है फिर भी शासनकी वजहसे प्रत्यभिज्ञान बन जायगा, यह वही सुखका साधन है ऐसे स्मरणपूर्वक प्रत्यभिज्ञान वासनाओंसे बनता है इस कारण अभिलाषा उत्पन्न हुई। और उस अभिलाषाकी सिद्धिके लिए फिर इस जीवने प्रवृत्ति की। यों कार्यका प्रारम्भ बन जायगा। पुण्य पाप सब सिद्ध हो जायेंगे, तो यह हेतु देना कि परलोकादिक सम्भव नहीं हैं। यह हेतु असिद्ध हो गया कारण कि परलोकादिक अब सम्भव हो गए। भले ही ज्ञान क्षणिक दिख रहे। लेकिन जो जो वासना उनमें विराजी है उसके कारण प्रत्यभिज्ञान हो जाया करता है। इस शङ्काके उत्तरमें अब कहते हैं कि यदि वासनाकी वजहसे उन भिन्न-भिन्न ज्ञान-क्षणोंमें प्रत्यभिज्ञानपना मान लिया जायगा और फिर उससे साध्यके साधन असिद्ध बताकर हेतुको असिद्ध कहेंगे तो देखिये! स्पष्ट दोष है कि भिन्न-भिन्न कालमें होने वाले उन ज्ञानक्षणोंमें वासना भी कैसे सम्भव हो जायगी? एक देहमें जो ज्ञान क्षण धाराप्रवाह उत्पन्न होते जाते हैं उन ज्ञानक्षणोंमें वासना आ कैसे जायगी, क्योंकि उन सब पदार्थोंका ज्ञानक्षणोंका भिन्न भिन्न समय है और सभी ज्ञानक्षण केवल अपने ही एक समयमें परिपूर्ण हैं, अगले समयमें उनका पूर्ण विनाश है। तो ऐसी स्थितिमें वहाँ वासना कैसे बन जायगी? जैसे कि अकार्यकारणसे वासना नहीं बन सकती। जिसमें कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है ऐसे घटक्षण पटक्षण ये सब भिन्न काल होनेसे जैसे इसमें वासना नहीं मानी क्षणिकवादियोंने तो ये ज्ञानक्षण भी तो भिन्न भिन्न समयमें हो रहे हैं, इनमें कैसे वासना बन जायगी? अत: वासनाकी वजहसे इन ज्ञान क्षणोंमें प्रत्यभिज्ञान मान लेना युक्तिसङ्गत बात नहीं है। एक ही आत्मा हो और उस होने पहिले अनुभव किया, आज स्मरण कर रहे, ये स्थितियाँ मानी जायें तो ये प्रत्यभिज्ञान आदिक सिद्ध हो सकेंगे।

निरन्वय क्षणिकवादमें पूर्वक्षणमें व उत्तरक्षणमें वासना व कार्यकारण भावकी असिद्धि-शंकाकार कहता है कि जो पूर्वका ज्ञानक्षण है वही ज्ञानक्षण उत्तर ज्ञानक्षणकी उत्पत्तिमें वासना कहलाती है। अर्थात् जो नवीन ज्ञानक्षण उत्पन्न हुआ है तब पूर्व ज्ञानक्षणका नाम वासना हो जाती है, क्योंकि ज्ञानक्षणमें पूर्वज्ञानक्षण कारण हुआ करता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि जिनका सिद्धान्त निरन्वय क्षणिकताका है अर्थात् वस्तु ऐसा क्षणिक है जो अगले समयमें मूलत: नष्ट हो जाता है, उसका कोई अन्वय नहीं रहता। तो ऐसा निरन्वय क्षणिकपना ज्ञानक्षणोंमें माना जाता है तो उनमें कारणता कैसे आ जायगी? कि कोई कारण बन जाय और कोई कार्य बन जाय। जब वे सब ज्ञानक्षण अपने अपने सम्बन्धसे परिपूर्ण हैं तो उनमें कारणकार्यपनेकी बात नहीं कही जा सकती। वह किस तरह सो सुनो। जब उत्तर ज्ञानक्षण उत्पन्न होता है उस समयमें पूर्व ज्ञानक्षण तो विनष्ट हो गया। तब जो अभाव है और विनष्ट हो गया वह कारण नहीं हो सकता, क्योंकि असत् होनेसे।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे कि बहुत पहिले समयमें जो पदार्थ नष्ट हो गए वे आजके ज्ञानक्षणके कारण तो नहीं हो रहे तो ऐसी तरह पूर्व ज्ञानक्षण भी नष्ट हो गया तो वह उत्तर ज्ञानक्षणका कारण कसे हो जायगा ? शंकाकार कहता है कि जो समनन्तर अतीत है वह कारण हो जाता है। जैसे दूसरे समयमें जो ज्ञानक्षण हुआ है उसका कारण पहिले समयका ज्ञानक्षण हो जायगा। जो निकटका अतीत है वह कारण हुआ करता है। तो "बहुत पहिलेका जो अतीत है वह कारण नहीं है" ऐसा उदाहरण दे करके समनन्तर अतीत को भी कारण नहीं मानता, यह सङ्गत बात नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि समनन्तर अतीत हो और चिरकालका अतीत हो, अभाव तो दोनोंमें ही पाया जा रहा। जैसे चिरकालके अतीत पदार्थ कुछ नहीं हैं, वे उस समयके पदार्थके कारण नहीं बनते, इसी प्रकार निकटवर्ती अतीत भी तो विनष्ट हो गया उसका भी अभाव है। तो जब दोनोंमें अभावकी अविशेषता है तो जैसे चिरकालका अतीत ज्ञानक्षणका कारण नहीं है, इसी प्रकार पूर्वकालका अतीत भी उत्तर ज्ञानक्षणका कारण नहीं हो सकता है। और उत्तरक्षण पूर्वक्षणका कार्य भी नहीं बन सकता क्योंकि पूर्वज्ञानक्षण का अभाव होनेपर उत्तर ज्ञानक्षणका सद्भाव हुआ है। तो जैसे भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें एकका अभाव होनेपर दूसरेका सद्भाव हो रहा हो तो वहाँ कार्यपना तो नहीं माना जाता। जैसे यहाँ घटका अभाव हुआ और पटका कहीं उत्पाद हुआ तो उस पटका कारण घट न बन जायगा। तो जैसे भिन्न-भिन्न वस्तुओंमें एकका अभाव दूसरेके सद्भाव होनेमें कारण नहीं बनता उसी प्रकार पूर्वज्ञानक्षणका उत्तरज्ञानक्षण कार्य नहीं कहला सकता। सो पूर्वका कारणपना भी न बनेगा।

निरन्वय क्षणिकवादमें अन्वयव्यतिरेककी असिद्धि— शङ्काकार कहता है कि पूर्वज्ञानक्षणमें और उत्तरज्ञानक्षणमें अन्वयव्यतिरेकका सम्बन्ध है, तो पूर्वज्ञान-क्षणका उत्तरज्ञानक्षणके साथ अन्वयव्यतिरेक होनेके कारण उत्तरज्ञानक्षण पूर्वज्ञान-क्षणका कार्य हो जायगा। उत्तरक्षणमें अन्वय तो वहाँ यों पाया जाता कि पूर्वज्ञान-क्षण होनेपर ही उत्तरज्ञानक्षण होता है। व्यतिरेक यों बन जायगा कि पूर्वज्ञानक्षणका अभाव होनेपर अर्थात् पूर्वज्ञानक्षण आये ही नहीं तो उत्तरज्ञानक्षण नहीं बनता। तो यों अन्वयव्यतिरेक पाया जानेसे उत्तरज्ञानक्षण पूर्वज्ञानक्षणका कार्य बन जायगा। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह बात असिद्ध है। जब पूर्वज्ञानक्षण समर्थ मौजूद है और उस समय उत्तरज्ञानक्षण स्वयं उत्पन्न नहीं हो रहा और पूर्वज्ञानक्षणके अभावमें अर्थात् पीछे हो जायगा। तो वहाँ उस उत्तरज्ञानक्षणको पूर्वज्ञानक्षणका कार्य कहना अथवा उसका समनन्तरपना बताना यह बात असिद्ध है नित्यकी तरह। जैसे कि क्षणिकवादी नित्यैकान्तके विरोधमें कहते हैं कि समर्थ नित्यके होनेपर कार्य उत्पन्न नहीं हो रहा और जब चाहे वह कार्य अपने समयपर हो जाता है, इस कारण किसी कारणका वह कार्य नहीं कहला सकता। इसी प्रकार क्षणिक एकान्तमें भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह बात बनती है कि कारणके होनेपर तो कार्य हो नहीं रहा, क्योंकि कारण है पूर्वक्षणमें और कार्य होता है उत्तरक्षणमें। तो कारणके सद्भावके समय कार्य हो नहीं रहा और कार्यके अभाव होनेपर ही कार्य हो रहा है तो उस कार्यका पूर्वक्षण रूप कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक बताना, उत्तरक्षणको पूर्वक्षणका कारण कहना युक्त नहीं है।

नित्यैकान्तकी तरह क्षणिकैकान्तमें कार्योत्पत्तिके समयनियमकी कल्पनाकी अशक्यता—शंकाकार कहता है कि क्षणिक एकांतमें कारणके अभाव की समानता होनेपर भी अर्थात् जिस समय कार्य हो रहा है उस समय पूर्वक्षणरूप कारण भी नहीं है और उससे अनेक पूर्वोंमें हुए कारण भी नहीं है तो पूर्वक्षण कारणका अभाव है और बहुत पूर्वापर क्षणोंका भी अभाव है। तो भले ही कारण के अभावकी समानता है फिर भी कार्योत्पत्तिके समयमें क्षणिकैकांतमें कारण बनेगा, पूर्वक्षण कारणरूप होता है, ऐसी कल्पना की जा सकती है। इसके उत्तरमें कहते हैं। तो इस ही प्रकार फिर नित्यत्वैकान्तवादियोंके यहाँ भी कूटस्थ होनेपर भी और उन कार्योंके करनेकी सामर्थ्यका सद्भाव समानता होनेपर भी जब कार्य नहीं हो रहा तब भी उस नित्य पदार्थमें कार्यका कारण होनेका सामर्थ्य है। और जब कार्य हो रहा उस समय भी नित्य पदार्थमें उस कार्यके करनेका सामर्थ्य है तो यों कार्य करने की समर्थताका सामान्य होनेपर भी जब कार्यका जन्म हो रहा उस समय कार्य नियम वहाँ भी क्यों न हो जायगा। जैसे कि क्षणिकैकान्तमें युक्ति बना ली वही युक्ति नित्यैकान्तमें भी बन जायगी।

नित्यैकान्तकी तरह क्षणिकैकान्तमें भी स्वकालको कार्योत्पत्तिका हेतु बनानेकी असंगतता—शंकाकार कहता है कि जिस कार्यके प्रदेश क्षेत्रमें कारणरूप के होनेपर कार्य होता है और कार्यके प्रदेशक्षेत्रमें कारणरूप न हो तो कार्य नहीं होता। यों जिस प्रकार अन्वयव्यतिरेक यहाँ पाया जाता है इस कारण समर्थ कारण के होनेपर कर्म होता है और ऐसे ही स्वकालमें भी बात घटती है, अपने कालमें उत्तर पूर्वक्षण पूर्वसमयमें रहता है वही उस कारणका स्वकाल है। तो अपने कालमें समर्थ कारणता होनेपर कार्य उत्पन्न होता है जैसे जिस संतानमें उत्तरक्षण हो रहा वहाँ कार्यकी जगहमें ही तो कारणका सत्‌भाव था। तो इसी प्रकार जैसे वह स्वदेशमें था यों ही कालकी दृष्टिसे वह पूर्वक्षण अपने कालमें आता तो कार्य उत्पन्न होता है और अपने कालमें कारण न आये तो कार्य नहीं होता। यों कार्यका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेकका विधान बन जायगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इसी तरह नित्यैकांतमें भी कार्यका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक बन सकेगा। वह किस प्रकार, सो सुनो! अनादि अनन्त वह नित्य समर्थ कारण अपने कालमें है, उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काल है अनादि अनन्त सदाकाल। तो अपने कालमें उस नित्य समर्थ कारणके होने पर अपने समयमें कार्य उत्पन्न हो रहा और अन्य समयमें कार्य उत्पन्न नहीं हो रहा तो यों कार्यका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेकका विधान क्यों नहीं मान लिया जाता ? शंकाकार कहता है कि इसका नित्य कारण तो सर्वथा समर्थ है। तो हर समय नित्य कारणके होनेपर कार्य अपने ही कालमें हो रहा जब जब कारण है तब तब याने सब समयोंमें कार्य तो नहीं हो रहा। तो समर्थ कारण अपने कालमें है पर कार्य उन सब कालोंमें नहीं है। कार्य अपने ही समयमें हो रहा है इस कारण कार्य नित्यकारणके साथ अन्वय व्यतिरेक कैसे रख सकेगा ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इसी तरह क्षणिकैकान्तमें समझ लीजिए कारणक्षणसे पहिले और कारण क्षणके बाद अनादि अनन्त समयोंमें कारणका अभाव है। याने जैसे कोई कार्य ८ बजकर १० मिनट समयमें हो रहा तो ९ वें समयमें कारण है पर ८वें समयमें और उससे पहिलेके सारे समयोंमें कारण नहीं है और १०वें समयमें और उसके बादके समयोंमें भी कारण नहीं है तो कार्यक्षणसे पहिले और पीछे अनादि अनन्त काल तक कारणक्षणका अभाव है। यों अभावरूपतासे सर्वत्र समानता है। केवल ९वें समयका कारणक्षणका सद्भाव है, उसके पहिले अनन्त काल तक। उसके पश्चात् अनन्तकाल तक पर्यायमें भी कारणका अभाव है। तो यों कारणके अभावकी समानता होनेपर भी अपने समयमें ही कार्य हो रहा है तो वहां भी कैसे नहीं नित्य कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक बन जायगा ? क्षणिकैकान्तमें और नित्यैकान्तमें कार्यके समयमें कारणका अभाव होनेकी समानता दिखाकर दोनों जगह उत्तर समानतासे दिये जा सकते हैं। यों जब दोनों पक्षोंमें समता आई जो बात क्षणिकवादी अपना उपालम्भ दूर करनेके लिए कहेंगे वही बात नित्यैकान्तमें भी कही जा सकती है। तो यों दोनों पक्षोंमें जिस कारण समता है और यों अन्वय व्यतिरेक न होनेकी भी समानता है। तब शङ्काकारका यह कहना कि क्षणिकैकांतमें ही कार्यकी उत्पत्ति सिद्ध होती है, ऐसा कहना केवल अपने पक्षके आग्रहके कारण हुआ है। युक्ति नहीं समर्थन करती और जब इस तरह बिना हेतुके कारणके अभावमें कार्यका होना मान लिया तो कार्य आकस्मिक बन गया, अटपट कहीं भी कुछ कार्य बन जाय क्योंकि कार्यमें हेतु तो कुछ है नहीं। समर्थ कारणकी अपेक्षा न रखकर स्वयं अपने इष्ट समयमें कार्य हो रहा है तो इसका अर्थ यही तो हुआ कि वह कार्य अहेतुक है। उस कार्यका कारण कुछ नहीं है नित्य कार्यकी तरह। जैसे नित्यैकान्तवादियोंके यहाँ कार्यको अहेतुक कहा जायगा, क्योंकि कारण सदा मौजूद है, पर कार्य सदाकाल नहीं है। तो अपने समयमें जब कार्य हुआ है, होता है तो अब उसमें हेतु कुछ न रहा। यों कार्य निर्हेतुक हो गया और आकस्मिक हो गया।

नित्यैकान्तकी तरह क्षणिकैकान्तमें भी 'यह कार्य इस कारणका है'

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस व्यपदेशकी असिद्धि—शङ्काकार कहता है कि यद्यपि क्षणिकपक्षमें और नित्य पक्षमें दोनों जगह समानतासे अन्वय व्यतिरेककी अनुपयोगिता सिद्ध होती है जैसे कि अभी चर्चामें बताया गया है तो भले ही दोनों पक्षोंमें समानरूपसे अन्वय व्यतिरेकके ढङ्गसे उपयोग नहीं रहा फिर भी क्षणिकवादमें ही 'यह कार्य इस क्षणिकका है' ऐसा व्यपदेश बन सकेगा, ऐसा ही कल्पित सत्य बनेगा। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि फिर इस तरह नित्य पक्षमें भी 'यह कार्य उस नित्य कारणका है' यह व्यपदेश क्यों न बन जायगा ? क्षणिककारणका तो यद्यपि सर्वथा कार्यके प्रति अनुपयोग है फिर भी यह बताना कि यह कार्य उस क्षणिक कारणका है और नित्य पदार्थ भी कार्यके प्रति अनुपयोग है फिर भी यह बताना कि यह कार्य उस क्षणिक कारणका है और नित्य पदार्थ भी कार्यके प्रति अनुपयोगी है फिर भी उसे यह कह देना कि यह कार्य इस नित्य कारणका नहीं है, तो इसमें सिवाय एक व्यामोह और पक्षके आग्रहके और कोई कारण नहीं है। जब कार्यके प्रति अनुपयोगी क्षणिक कारण रहा और कार्यके प्रति अनुपयोगी सर्वथा नित्य कारण भी रहा तो अब उनमें यह छटनी किस युक्तिके आधारपर की जा सकती है कि क्षणिक एकान्तमें तो यह व्यपदेश बन जायगा और नित्य एकान्तमें न बनेगा, यह केवल महामोहके आधारपर ही कहा जा सकता है।

नित्यैकान्तकी तरह क्षणिकैकान्तमें एक अर्थमें नाना शक्तियोंकी सिद्धि होनेसे निरंशताका प्रतिक्षेप—शङ्काकार कहता है कि देखिये ! नित्य पदार्थ प्रतिक्षण अनक कार्योंको कर रहा है तो अब उस नित्य पदार्थमें क्रमसे अनेक स्वभाव सिद्ध होते हैं। तब कैसे कहा जाता कि वह नित्य पदार्थ एक है और उसमें एकता कैसे कही गई। जब अनेक कार्योंको कर रहा है तो उसमें क्रमशः अनेक स्वभाव सिद्ध हो जाते हैं। तब वह एक न रहा, वह अनेक रहा, भिन्न-भिन्न रहा, कालभेदसे न्यारा रहा तो वह नित्य नहीं कहा जा सकता। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि फिर क्षणिकवादमें भी ये क्षणिकवादी बतायें, शङ्काकारका क्षणिक भी प्रतिक्षण अनेक कार्योंको कर रहा है। तो उसमें भी क्रमसे अनेक स्वभाव सिद्ध हो जायेंगे, तो उसका स्वलक्षण भी एक कैसे रह जायगा ? फिर वहाँ जो टुकड़े कर डाले, तो यों एकताके जाननेका परिणमन दोनों जगह समान रह जायगा। देखिये ! यदि शङ्काकार यह कहे कि क्षणिक पदार्थमें अनेक स्वभाव नहीं हैं इस कारण प्रश्न दोनों जगह समान नहीं ठहरते। तो सुनो ! वह क्षणस्थिति अर्थात् अपने एक समयमें रहने वाला वह क्षणिक पदार्थ एक होकर भी अनेक स्वभाव वाला है, क्योंकि चित्रकार्य होनेसे नाना अर्थोंकी तरह। जैसे कि चित्र विचित्र कार्योंको उत्पन्न कर रहे हैं नाना पदार्थ तो वे अपने अनेनेमें एक हैं। एक एक होकर भी अनेक स्वभाव वाले हैं। यों ही रूपक्षण सभी पदार्थ एक होकर भी अनेक स्वभाव वाले सिद्ध होते हैं। कारण कि शक्तिमें भेद माने बिना नाना कार्यपना नहीं बन सकता। जैसे कि रूपादिक ज्ञान ये कार्यरूप हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो जब वे नाना हैं तो रूपादिक ज्ञान नाना हैं। और वे रूपादिक ज्ञान तब ही तो बने जब कि कारण शक्तियाँ नाना हैं। रूपक्षण अलग है, रसक्षण अलग है तो उस पदार्थसे उत्पन्न हुआ रूपज्ञान, रसज्ञान ये भी अलग-अलग हो जाते हैं। जैसे एक ककड़ीमें रूपादिक अनेक ज्ञान हो रहे, रूपज्ञान भी हो रहा, रसज्ञाच भी हो रहा, गंधका ज्ञान भी हो रहा, स्पर्शका ज्ञान भी हो रहा। कोई पुरुष ककड़ी खा रहा हो उस समय ये पाँचों प्रकारके ज्ञान हो रहे हैं। शब्द ज्ञान भी वहाँ हो रहा है। तो ये ५ प्रकारके ज्ञान तब ही तो बन रहे हैं जब वहाँ रूपादिक स्वभाव ५ प्रकारके पडे हुए हैं। तो इस प्रकार जो स्वलक्षण है, क्षणिक पदार्थ है उस क्षणिक पदार्थसे भी नाना कार्य होते हैं तो वे नाना कार्य कैसे बने ? यों बने कि कारणक्षणमें शक्तिभेद उतने हैं उनके निमित्तसे नाना कार्य होते हैं यह बात सिद्ध हो जाती है। जैसे एक दीपक जल रहा है तो वहाँ नाना कार्य एक साथ हो रहे हैं—बत्तीका छोर भी जल रहा है, तेलका शोषण भी हो रहा है, अंधकार दूर हो रहा है, काजल छूट रहा है, पदार्थोंका प्रकाश हो रहा है तो एक दीपकसे कितने विचित्र कार्य हुए। तो एक दीपकसे होने वाले ये इतने विचित्र कार्य यह सिद्ध करते हैं कि उस दीपकमें इतने कार्य करनेकी शक्ति पड़ी हुई है। तो उन शक्तिभेदोंके निमित्तसे ये नाना कार्य हो रहे हैं यह सिद्ध होता है। तो कैसे नहीं क्षणिक पदार्थ अनेक स्वभाव वाले सिद्ध होते हैं, और जब अनेक स्वभाव सिद्ध हो गए तो नित्य एकांतमें उपालम्भ देंगे वही क्षणिकवादमें उपालम्भ आता है।

पदार्थमें नाना शक्तियाँ न माननेपर रूपादिकोंके नानापनकी सिद्धिका प्रसंग—किसी पदार्थमें यदि नाना शक्तियां न मानी जायेंगी और यही एक आग्रह रखा जाय कि प्रत्येक पदार्थ एक भावात्मक है, एक शक्ति मात्र है तब तो रूप रस आदिक ये भी नाना सिद्ध न हो सकेंगे। यहां भी कहा जा सकेगा कि चक्षु इंद्रिय आदिक सामग्रीके भेदसे उस पदार्थमें रूप रस आदिक नाना ज्ञानोंका प्रतिभास होता है। ककड़ी आदिक द्रव्य तो रूपादिक स्वभाव भेदसे रहित है, एक है, अवंश है। केवल इंद्रिय भेदसे वहां प्रतिभास भेद हो रहा है उस ही एक ककड़ीमें चक्षु इंद्रियसे देखने पर रूप नजर आता है। नासिका इंद्रियसे देखनेपर गंध, कर्ण इंद्रियसे देखनेपर शब्द, रसना इंद्रियसे देखनेपर रस, और स्पर्शन इंद्रियसे देखनेपर उसके कडे नरम आदिपनका बोध होता है। वहां रूप, रस आदिक स्वभावभेद नहीं हैं ऐसा कोई कहे तो उसका कैसे निवारण किया जा सकता है। और यदि रूपादिक नाना तत्त्व इष्ट है तो यह स्वीकार करना होगा कि एक पदार्थमें नाना शक्तियां, नाना स्वभाव पाये जाते हैं।

नानारूपादिकोंको ही पदार्थ मानकर द्रव्यका निषेध करनेपर दूजि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कामुखदाहादि शक्तियोंको पदार्थ मानकर प्रदीपक्षणके भी अपलापका प्रसंग
अब यहां शंकाकार कहता है कि चक्षु इंद्रिय आदिकके ज्ञानमें तो रूपादिकके सिवाय अन्य कुछ द्रव्य ही नहीं प्रतीभास होता है इस कारणसे एक द्रव्य माननेकी बात तो दूर जाने दो। द्रव्य ही वहां कुछ नहीं है। वहाँ तो रूपक्षरण, रसक्षरण आदिक ये ही नाना पाये जा रहे हैं। एक द्रव्य हो और उसमें रूपादिक नाना स्वभाव हों यह कथा तो दूर ही रहो द्रव्य ही नहीं है किन्तु रूपादिक पदार्थ ही वे नाना पाये जाते हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यदि इस तरह रूप रस आदिकको नाना पदार्थ मानते हो तो बत्तीके मुखका जलना, अंधकारका नष्ट होना, तैलका शोषरण होना आदिक कार्योंका जो अनुमान किया जा रहा है परिज्ञान किया जा रहा है उस विधिमें भी नाना प्रकारकी उन व्यक्तियोंसे व्यतिरिक्त उन शक्तियोंके अलावा प्रदीप क्षरण नामका कोई भी एक पदार्थ प्रतिभासमें नहीं आता। तब वहाँ भी नाना शक्तियां ही क्यों न मानली जायें ? तब जो कुछ प्रतिभासमें आ रहा है केवल उसके प्रतिभासके आधारपर जब नाना पदार्थ मान रहे तो एक प्रदीपमें जो नाना शक्तियाँ प्रतिभासित होती हैं सो ये शक्तियाँ मानो। इनको ही पूरा पदार्थ कहलो। इसके अतिरिक्त कोई प्रदीपक्षरण एक अलग प्रतीत होता ही नहीं है यों मान बैठो फिर, क्योंकि यहाँ भी नाना शक्तियाँ सिद्ध हो जाती हैं।

शक्तियोंको शक्तिमानसे भिन्न माननेपर उनके व्यपदेशकी असिद्धि होनेसे शक्तियोंकी अपरमार्थभूतताकी शंका—शंकाकार कहता है कि शक्ति और शक्तिमान इनका कथन करना ही गलत है, क्योंकि शक्तियोंकी किसी भी प्रकार सिद्धि नहीं होती। अच्छा बताओ यदि शक्ति और शक्तिमान अलग अलग दो बातें हैं तो शक्ति और शक्तिमानमें भिन्नता है या अभिन्नता ? ऐसे दो विकल्प करनेपर जो उत्तर दोगे वे सब असंगत होंगे। तब शक्तियाँ संवृत्तिवश ही प्रतीत होती है यों समझना चाहिए, शक्तियाँ कोई वास्तविक शक्तियाँ नहीं हैं। ये तो अनुमानसे वासनासे कल्पनासे विदित की जाती हैं। देखिये ! यदि शक्ति शक्तिमानसे भिन्न है तो यह सम्बन्ध ही कुछ नहीं है। शक्तियाँ बिना शक्तिमान अन्य पदार्थ है, शक्तिमान बिना शक्तियाँ अन्य पदार्थ हैं यों मान रहे हो अब तो। सो भिन्न पदार्थोंमें यह इसका है यह व्यपदेश कैसे किया जा सकता है ? जैसे हिमालय और विन्ध्याचल ये दोनों अलग पर्वत हैं तो क्या वहाँ यह व्यपदेश बन सकता है कि हिमालयका विन्ध्याचल है और विन्ध्याचल हिमाचल है। यदि शक्तियाँ शक्तिमानसे भिन्न हैं तो 'शक्तियाँ इसकी हैं' यह व्यपदेश नहीं बन सकता। और स्पष्ट ही यह दोष आता है कि शक्तियाँ बिना शक्तिमान क्या ? सो यों दोनोंका अभाव सिद्ध हो जाता है। शक्तियाँ फिर क्या सिद्ध होंगी ?

उपकार्योपकारकत्व सम्बन्धकी असिद्धि होनेसे शक्ति व शक्तिमानकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिद्धि न हो सकनेका शंकाकार द्वारा कथन—यदि कोई कहे कि शक्तिमानके द्वारा उन शक्तियोंका उपकार्य उपकारक भाव सम्बन्ध है याने शक्तिमान और शक्तियां इनमें सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध है उपकार्य उपकारक एक उपकार किया दूसरेका उपकार हुआ, इस सम्बन्धमें वहां व्यपदेश बन जायगा कि ये शक्तियां उस शक्तिमानकी हैं। तो यों यदि उपकार्य उपकारक सम्बन्ध मानकर व्यपदेश बनाना चाहते हो तो बताओ शक्तिमानके द्वारा जो शक्तियाँ उपकृतकी गई हैं तो क्या अन्य शक्तियोंके द्वारा उपकृत की गई हैं याने शक्तिमानमें शक्तियोंका उपकार किया तो यह उपकार शक्तिमानने शक्तियों द्वारा किया क्या ? यदि शक्तिमानने अन्य शक्तियों द्वारा प्रकृत शक्तियोंका उपकार किया तो इसमें अनवस्था दोष आता है। अब जिन अन्य शक्तियोंके द्वारा प्रकृत शक्तियोंका उपकार किया तो वे अन्य शक्तियाँ भी इसकी हैं यह कैसे सिद्ध होगा ? फिर वहाँ भी अन्य उपकार्य उपकारक सम्बन्ध मानना और इस सम्बन्धको सिद्ध करनेके लिए अन्य शक्तियाँ मानते जाना होगा तो यों अन्य-अन्य भिन्न-भिन्न शक्तियोंके मानते रहनेमें कहीं टिकाव भी न हो सकेगा। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि शक्तिमानके द्वारा किसीका उपकार होता है और उससे फिर ये शक्तियाँ इस शक्तिमानकी हैं यह व्यपदेश बन सकता है। शङ्काकार ही कहे जा रहा है कि यह तो सिद्ध न हो सका कि शक्तिमानके द्वारा शक्तियोंका उपकार हुआ। अब यदि यह विकल्प स्वीकार करते हो कि शक्तियोंके द्वारा शक्तिमानका उपकार हुआ तो शक्तियाँ तो अनेक हैं, तब शक्तिमानमें भी अनेक उपकार्यरूपताका प्रसङ्ग होगा। अब यहाँ उपकारक तो माना है शक्तियोंको और उपकार्य माना गया है शक्तिमानको, क्योंकि विकल्प यह किया जा रहा है कि शक्तियोंके द्वारा शक्तिमानका उपकार किया गया है। तो शक्तियाँ जब अनेक हैं तो शक्तिमानमें अनेक उपकार्योंके उपकारकत्वकी बात आ जायगी। तो अब यह बतलावो कि वे जो अनेक उपकार्यरूप बने उनका इन शक्तियोंसे यदि भेद है तब तो उनका उपकार नहीं बन सकता और तब यह उपकार शक्तिमानका है, यह व्यपदेश तक भी नहीं बन सकता। यह पूर्ववत् ही आपत्ति है। यदि कहो कि उपकार्य रूपके द्वारा शक्तिमानका उपकार किया जाता है तो इसमें अनवस्था दोष आयगा। अब अन्य-अन्य अनेक उपकार्य रूपकी कल्पना करते जाइये, कहीं भी टिकाव नहीं बन सकता। अतः यह विकल्प भी उचित नहीं है कि शक्तियोंके द्वारा शक्तिमानका उपकार किया जाता है। तो यों शक्तिमानको शक्तियोंसे भिन्न माननेपर शक्तियोंकी सिद्धि नहीं होती।

शक्तियोंको शक्तिमानसे अभिन्न माननेपर भी शक्तियोंकी सिद्धि न हो सकनेके कारण तथा अतद्व्य वृत्तिसे शक्तियोंकी कल्पनामात्र होनेके कारण शक्तियोंकी अपरमार्थताकी शङ्का—शङ्काकार ही कहे जा रहा है कि अब यदि यह मानोगे कि शक्तिमान शक्तियोंसे अभिन्न है, अनर्थान्तर है याने जो शक्तियाँ हैं वही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्तिमान है तो यों शक्तिमानको शक्तियोंसे अभिन्न माननेपर एक ही चीज रही, उसे यदि शक्तिमान कहो तो शक्तियाँ कुछ अलग न रहीं, क्योंकि अब तो सर्वथा अभेद मान लिया गया है। और भी सुनो ! शक्तियाँ कुछ कहलाती नहीं हैं, सिर्फ कल्पित अतद्व्यावृत्तियोंसे शक्तियोंकी सिद्धि होती है। अतद्व्यावृत्तिका मतलब है कि जिस शक्तिको जानना है उस शक्तिसे भिन्न जो अन्य अनेक क्षण हैं, उनसे व्यावृत्त है। इसीका नाम शक्ति है अर्थात् अन्यापोहके द्वारा ही पदार्थोंका बोध होता है तो शक्ति का भी बोध अन्यापोह द्वारा हुआ है और वह भी कल्पित है, क्योंकि शक्तियाँ तो वस्तु कुछ हैं नहीं। तो यह भी नहीं कह सकते कि शक्तियाँ शक्तिमानसे अभिन्न हैं और उससे वे अनेक शक्तियाँ एक पदार्थमें सिद्ध होती हैं।

भेदाभेदका विकल्प करके शक्तियोंका अभाव सिद्ध करने वाले शङ्काकारके यहाँ रूपादिककी असत्ताका प्रसङ्ग—अब उक्त शङ्काओंके उत्तरमें कहते हैं कि शङ्काकारका उक्त कथन युक्त नहीं है। यों विकल्प करके यदि शक्तियोंकी असिद्धि करते हो तो रूपादिकके सम्बन्धमें भी बतायें ये शङ्काकार कि रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक द्रव्यसे भिन्न हैं या अभिन्न ? दोनों ही पक्षोंमें विचार करनेपर रूपादिक सिद्ध न होंगे। रूप, रस, गंध, स्पर्श ये परमार्थ सत् न बन सकेंगे और इनके रूपक्षण आदिक शब्दोंसे किसी पदार्थकी बात बताना युक्त न होगा। और भी स्थितिमें जो दोष अभी शङ्काकारने दिया है वे सब दोष इन रूपादिकके सम्बन्धमें भी आयेंगे कि यदि रूपादिक द्रव्यसे भिन्न हैं तो यह रूप उस द्रव्यका है यह व्यपदेश न बनेगा। यदि अभिन्न है तो वह द्रव्य ही कहलाया, रूपादिक नानारूप न कहलायेंगे। तो यों रूप आदिक भी घटित न होंगे। यह भी न कहा जा सकेगा कि प्रत्यक्ष विधिमें याने निर्विकल्प ज्ञानमें प्रतिभासित हुआ, रूपादिक परमार्थ सत है, पर अनुमान विधमें प्रतिभासमान हुई शक्तियाँ परमार्थ सत् नहीं हैं, यह नहीं कहा जा सकता याने शङ्काकार अपने पक्षमें आये हुए दोषोंका निवारण करनेके लिए यदि यह कहे कि रूप रस आदिक तो उस निराकार दर्शनमें प्रतिभासमान होते हैं अतएव वे वास्तविक पदार्थ हैं, पर पदार्थमें रहने वाली शक्तियाँ निर्विकल्प ज्ञानमें प्रत्यक्ष विधिमें प्रतिभासित नहीं होते इस कारण वे परमार्थ सत् नहीं हैं। उनका ज्ञान तो अनुभव द्वारा ही किया जाता है। यह दलील दे करके शक्तियोंका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। अन्यथा अर्थात् अनुमान विधिमें प्रतिभासित होनेसे शक्तियोंको अवस्तु कह दिया जायगा तब फिर पदार्थोंमें क्षणिकता है, इसकी सिद्धि अनुमानसे की जाती है। अनुमानसे जो जाना जाता है वह परमार्थ सत् नहीं है, ऐसा शङ्काकारने स्वीकार किया है। तो पदार्थोंकी क्षणिकता परमार्थतः सही न रहेगी और स्वर्गमें प्राप्त करानेकी शक्तियाँ हैं तो उन शक्तियोंका भी अनुमान विधिसे ही प्रतिभास किया जाता है तो वह भी परमार्थ सत् न रहेगा। यों शङ्काकारके माने गए स्वयं इष्ट तत्त्व भी असिद्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो जायेंगे। शङ्काकार कहता है कि क्षणक्षय आदिक तो प्रत्यक्षमें प्रतिभात हुए हैं, अब प्रत्यक्ष ज्ञानमें आये हुए क्षणिकताके सम्बन्धमें कोई विपरीत कल्पनायें करले तो उसकी विपरीत कल्पनाओंके निराकरणके लिए अनुमान प्रयोग किया जाता है याने पदार्थ तो क्षणिक हैं और कोई पदार्थको मान बैठे ध्रुव तो उसके इस विपरीत आशय का निवारण करनेमें अनुमानका व्यापार होता है, इस कारण कोई दोष नहीं है। वह क्षणिकता वास्तविक सिद्ध है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो यहां भी यह मान लीजिए कि प्रत्यक्षमें प्रतिभासित तो हुई नाना कार्य उत्पन्न करनेकी शक्तियाँ याने एक पदार्थमें नाना प्रकारकी क्रियावोंको उत्पन्न करनेकी शक्तियाँ हैं। ये शक्तियां प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रतिभासित हुईं, अब प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रतिभासित हुई उन ही शक्तियोंके बारेमें किसीका समारोप हो जाय याने शक्तियोंका अभाव है, ऐसा ख्याल बन जाय तो उस विपरीत अभिप्रायको दूर करनेमें ही कार्यानुमानका व्यापार होता है अर्थात् अनुमान द्वारा यह सिद्ध किया जाता है कि इस पदार्थमें उतने प्रकारके कार्योंके करने की शक्ति है। और उस अनुमानसे नाना शक्तियोंको सिद्ध किया गया है। तो अनुमान द्वारा उन शक्तियोंके विषयमें कोई विपरीत धारणा बनाये तो उन धारणाओंका निराकरण किया गया है अतएव शक्तियाँ भी परमार्थ सत् हैं, यों क्षणिकताकी सिद्धि की है। शक्तियोंकी भी सिद्धि होती है और जब शक्तियोंकी सिद्धि हो गई तब वस्तु एक अनेकात्मक सिद्ध हो गया। वहाँ अनेकान्तका आश्रय बन गया तो अनेकान्तका विरोध करके कोई पुरुष अपने इष्ट तत्त्वकी सिद्धि नहीं कर सकता पदार्थ क्षणिक ही है, ऐसा एकान्त माननेपर लोक आदिक कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। तो यों नित्यत्वके एकांतकी तरह क्षणिकका एकांत मानना प्रमाणसे बहिर्भूत है। प्रमाण सिद्ध नहीं है। अतएव वस्तुको कथंचित् अनित्य स्वीकार करना चाहिए।

नाना शक्तियोंका अपलाप करनेपर नाना रूपादिक क्षणोंके अपलाप के प्रसङ्गके विषयमें शंका समाधान—शंकाकार कहता है कि नाना कार्य दिख रहे हैं, उससे ही यह अनुमान होता है कि नाना कार्योंको करने वाले उन कार्योंको उत्पन्न करनेकी एक शक्ति है जो शक्ति उन समस्त कार्योंको कर देती है। वहाँ नाना शक्तियाँ माननेकी आवश्यकता नहीं है इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो ऐसे ही यहाँ समझ लीजिए कि नाना जो रूप ज्ञान आदिक प्रतिभास हो रहे हैं तो इस प्रतिभासके भेदोंसे एक द्रव्यमें उस प्रकारका एक स्वभाव मान लेना चाहिए कि द्रव्य एक है और उसमें रूप रस आदिक नाना ज्ञानोंका प्रतिभास करा देनेका स्वभाव है। फिर वहाँ रूपक्षण, रसक्षण आदिक माननेकी क्या आवश्यकता है ? दोनों ही जगह समान समाधान है। शंकाकार कहता है कि प्रदीप क्षण एक है, पर उसमें जो अनेक सहकारी सामग्री मिली हुई है—जैसे बत्तीका मुख जला देना, तैलका शोषण होना, अंधकारका दूर करना काजलका छोड़ना, सर्व पदार्थोंको प्रकाशित कर देना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदि उनके भेदमेंसे उस एक प्रदीप क्षणमेंसे नाना कार्योंके उत्पन्न कर देनेकी बात बनती है, पर स्वभाव भेद नहीं है। प्रदीपक्षण एक है, एक स्वभावरूप है, पर जैसी सहकारी सामग्री जितने प्रकारकी प्राप्त होती है उतने ही प्रकारसे वहाँ कार्य हो जाता है। स्वभाव नाना नहीं हैं। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो वही बात क्षणिक एकान्तवादकी समझ लेना चाहिए। ककड़ीमें जो रूप, रस, गंध स्पर्श आदिकका प्रतिभासभेद हो रहा है सो चक्षु इंद्रिय आदिक सहकारी सामग्रीके भेदसे हो रहा है, पर उस ककड़ीमें रूपादिक ज्ञानस्वभाव नहीं पडे हैं ऐसा वहाँ भी निश्चय नहीं, किन्तु शंकाकार तो ऐसा नहीं मान रहा। उनका तो सिद्धान्त है कि रूपादिक जो अनेक स्वभाव हैं वे एक द्रव्यमें नहीं, क्योंकि वे सब पृथक पर पदार्थ हैं। उनमें स्वभावभेद मान रहे हैं।

एक साथ एक पदार्थमें दृष्टि देने वालोंको प्रतिभासभेद होनेसे नाना शक्तियोंकी सिद्धि—एक पदार्थमें नाना दृष्टियोंसे नाना प्रतिभास होनेके कारण स्वभावभेद अथवा नाना शक्तियां सिद्ध होती हैं। एक साथ एक अर्थमें दृष्टियां लगी हैं जिनके, उनको तो उसमें भी प्रतिभासभेद होना ही चाहिए क्योंकि कारणसामग्री का भेद वहां भी पड़ा है। जैसे दूरसे वृक्षको देखा। बांसके वृक्षको देखा और बहुत दूरसे देखा तो जैसे इस तरह देखनेसे वहाँ निर्मल स्पष्ट अस्पष्ट प्रतिभास होते रहते हैं तो ऐसे ही एक वस्तुमें नाना दृष्टियोंकी विधिमें प्रतिभासभेद, दर्शन होना चाहिए, क्योंकि कारणसामग्रीके भेदसे वे भेद हो गए हैं पर ऐसा माना कहां है? अन्यथा मगर कारणसामग्रीके भेदसे एक ही अर्थमें जितने भी ज्ञान हुए उनमें प्रतिभासभेद नहीं मानते तो दर्शनभेद भी मत होवो,अर्थात् यह निर्मल है, यह अस्पष्ट ऐसा दर्शन भेद फिर क्यों होगा? पर ऐसा तो नहीं है, दर्शनभेद तो सबके अनुभव में आ रहा है। जो लोग दूरके पदार्थ देखते हैं उनको प्रतिभास अस्पष्ट होते हैं, जो निकटसे देखते हैं उनको स्पष्ट प्रतिभास होता है। तो देखिए इसमें दर्शनभेद सिद्ध है और दर्शनभेद होनेसे प्रतिभास भेद भी होना चाहिए। इस तरह दोनों प्रकारसे ही क्षणिकवादियोंके लिए एक रज्जुपाश जैसा काम बन गया। यदि ये रूपादिक ज्ञानके प्रतिभासभेदसे अलग अलग हैं ऐसी उन रूपक्षणका रसक्षण आदिककी व्यवस्था करने चलोगे तो इस तरह यहां भी यह मानना पड़ेगा कि प्रदीपक्षण एक है मगर कार्यकी विचित्रतासे उसमें स्वभावभेदको एक स्वभावरूप ही मानते हैं और यदि प्रदीप क्षणको एक स्वभाव वाला है यों व्यवस्था करने चलेंगे तो रूपक्षण, रसक्षण गंधक्षण, आदिककी विशिष्टताकी व्यवस्था न कर सकेंगे। यदि एक ही समय जो नाना कार्य हो रहे हैं उनके कारणोंको स्वभावके भेदके बिना मान लिया जाय, तो जिस कारणसे ये नाना कार्य हो रहे हैं उसमें स्वभाव भेद नहीं पड़ा है फिर भी हो रहे हैं, ऐसा मान लेनेपर फिर यहाँ भी यह मानना होगा कि किसी नित्य पदार्थमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जहां कि सहकारियोंकी अपेक्षा है सहकारी कारणकी वजहसे नाना कार्य हो रहे हैं तो वहाँ भी नित्य रहे, एक स्वभाव रहे और नाना कार्य हो जायें, इसमें फिर क्यों बाधा दी जा रही है ?

स्वभावभेद न करने वाले सहकारिकारणोंमें कार्यहेतुत्वकी असंभवता के उपालम्भकी क्षणिकवादमें भी समानता—शंकाकार कहता है कि नित्य पदार्थमें स्वभावभेद नहीं करने वाले सहकारी कारणोंमें नाना कार्यकारिता कैसे हो जाएगी अर्थात् नाना कार्य करनेकी बात सहकारियोंमें आ कैसे जायगी ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि जैसे क्षणक्षयमें यह मान लेते हैं कि स्वभावभेद नहीं है फिर भी सहकारी कारण नाना कार्योंके कारणभूत बन जाते हैं। यों ही यहाँ मान लीजिए कि सहकारी कारण कारणभूत नित्य पदार्थमें स्वभाव भेद न करके भी नाना कार्योंके हेतु बन जाते हैं। जैसे कि क्षणिक स्वलक्षणवादी क्षणिकवादियोंके यहाँ माना गया है कि नाना कार्योंको एक साथ उत्पन्न कर रहे स्वलक्षणके किसी भी प्रकारके अतिशयको सहकारी कारण नहीं करते हैं अर्थात् स्वभावभेदको नहीं करते हैं, फिर उस स्वभावभेदकी यह चर्चा ही क्या करें कि किया जाने वाला अतिशय क्षणिकस्वलक्षण से भिन्न है या अभिन्न है, वहाँ तो सहकारी कारण उस अनित्य पदार्थमें अनित्य पदार्थमें अनित्यसे भिन्न अथवा अभिन्न किसी भी प्रकारके अतिशय नहीं किया करते, तो फिर क्या किया करते ? भिन्न स्वभाव वाले कार्योंको ही वे सहकारी कारण निष्पन्न करते हैं। तो जैसे यों क्षणिकवादी मानते हैं उसी तरह नित्यपक्षमें भी मान लेना चाहिए, नित्य पदार्थमें भी सहकारी कारण एक साथ नाना कार्योंको उत्पन्न करते हैं तिसपर भी वे सहकारी कारण नित्य पदार्थमें उससे भिन्न अथवा अभिन्न किसी भी प्रकारके अतिशयको नहीं करते ऐसा नित्यमें भी मान लेना चाहिए। और, भी मान लेना चाहिए। यदि यह शंकाकार ऐसी मनमें आशंका रखे कि जब सहकारी कारणोंने कार्यको कर दिया तो अब नित्यकी कल्पना करनेसे क्या लाभ ? तो सुनो ! जो कादाचित्क है, सहकारी कारण अनित्य है वह विवक्षित उन उन कार्योंको करनेमें समर्थ है, इस कारणसे स्थिर नित्य पदार्थ उन कार्योंके करनेके स्वभावको नहीं छोड़ता है, क्योंकि उनमें बुद्धिपूर्वकता नहीं है। कारण हैं सहकारी अनेक मिल गए, जो कार्य उत्पन्न हो गए उसमें बुद्धिपूर्वकता तो है नहीं कि मुझ नित्यको अब क्या करना चाहिए। पर जैसे परमाणु आदिक अचेतन हैं तो जब उनमें बुद्धिपूर्वकता नहीं है तो वे करण स्वभावको नहीं छोड़ते हैं।

दृष्टान्तपूर्वक अक्षणिक पदार्थमें कार्यकारिताकी नाना शक्तियोंकी सिद्धि—जैसे कि क्षणिक सामग्रीमें कोई कारणान्तर है बीज, वह बीज जैसे अंकुर उत्पन्न करनेके स्वभावको नहीं छोड़ता, क्षणिक हैं पृथ्वी, जल आदिक सामग्री,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिनमें कोई बीज डाला गया है तो जब उस खेतमें गिरे हुए बीज अंकुर उत्पन्न करनेके स्वभावको नहीं छोड़ते, यदि बीज अंकुर उत्पन्न करनेके स्वभावको छोड़ दें तो बीज फिर कारण न रहेंगे। वे अंकुर बीजके कार्य न कहलायेंगे ऐसा नहीं है कि ये सब हेतु चाहे वे सहकारी कारण हों या उपादान कारण हों वे परस्परमें कोई ऐसी ईर्ष्या रखें कि जिस ईर्ष्यासे लिप्त होनेके कारण किसी एक कार्यमें एकका व्यापार हो तो दूसरे व्यापारसे हट जायें, ऐसा नहीं होता। सभी पदार्थ अपनी सीमामें हेतु बन रहे हैं और उपादान कारण अपनेमें कार्य कर रहा है उस एक कार्यको करनेके लिए सहकारी और उपादान कारण कुछ परस्परमें ईर्ष्या नहीं कर रहे कि यह कार्य करने आ गया, तो हम यहां क्यों रहें। क्यों कार्यके हेतु बनें ? ऐसी यहां ईर्ष्या नहीं है। यह तो कार्यकारण भावकी विधि ही है कि सहकारी कारण मिले तो उपादान कारणमें कार्यकी उत्पत्ति हो। क्षणिक पदार्थ अपने अंतिम कारणसामग्रीमें उस आये हुए अपने कार्यको कर लेता है, क्योंकि उसमें उस ही प्रकारका कार्य करने रूप स्वभाव पड़ा हुआ है। यही बात नित्यमें भी कही जा सकती है। अन्यथा पक्षपातवश ऐसी कोई कल्पनायें भी कर लेवे कि क्षणिकमें ही कार्यकारिता है नित्यमें नहीं है तो भी उत्तरकार्योंको उत्पन्न करने वाले कारणोंमें अपनी कारणताकी कोई प्रकृति अवश्य ढूंढनी पड़ेगी। जिस स्वभाव के वशसे उस उत्तरक्षणके कार्यके कारण की प्रकृतिकी व्यवस्था बनाई जायगी। तब उस ही कारणसे यह अकारण होकर भी यह नित्य पदार्थ किसीका कारण नहीं है, स्वभाव नियत है, ऐसा अकारण होकर भी स्वभावमें नियत अर्थ बने तो यों एक पदार्थमें नाना शक्तियाँ माननी होंगी सो निरंशवादकी तीव्रता बनाकर जो पुरुषमें आ रहे हैं जुदे जुदे ज्ञानक्षण उनको ही एक-एक पदार्थ मान लेना युक्त नहीं है।

शङ्काकार द्वारा पदार्थमें विनश्वरशीलताकी प्रकृतिकी सिद्धिका प्रयास

यहाँ शंकाकार कहता है कि है तो उन हेतुवोंकी अपनी प्रकृति याने क्षणिक पदार्थका एक क्षणके बाद फिर अवस्थान नहीं रहता है, ठहरता नहीं है, विनष्ट हो जाता है, यही उस पदार्थकी प्रकृति है, जिसे कहेंगे विनश्वरशीलता। पदार्थकी प्रकृति है विनश्वरता। तो विनाश स्वभावमें नियत होना, यह पदार्थोंमें प्रकृति पड़ी हुई है। यदि कोई कालान्तरमें ठहर जायें तो उन पदार्थोंमें कभी भी नाशपनेकी बात न आ सकेगी, क्योंकि विनाश अहेतुक हुआ करता है। कोई पदार्थ यदि दूसरे समय ठहर गया तो वह अनन्त काल तक ठहरा रहे, उसके नाश होनेका फिर क्यों अवसर आयगा ? विनाशके प्रति कोई भी कारण नहीं हुआ करता है। जो जिस भावके प्रति निरपेक्ष होता है वह उस भावमें नियत हुआ करता है। जैसे अंतिम कारणसामग्री अपने कार्यका उत्पादन करनेके लिए निरपेक्ष है तो अन्तिम कारणसामग्री कार्यके करनेके स्वभावमें नियत मानी जायगी। खेतमें खाद, बीज, पानी आदिक सब कुछ आ गया,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब अंकुर उत्पन्न होनेका समय आया तो सब कारण सामग्री मिलनेपर अब वह सामग्री अपने कार्यकी उत्पत्ति करनेके लिए अन्य किसीकी अपेक्षा नहीं रखती अतएव मानना होगा कि वह अन्तिम कारण सामग्री कार्य करनेके स्वभावमें नियत है । तो इसी प्रकार ये सभी पदार्थ विनाश होनेके लिए किसीकी अपेक्षा नहीं रखते हैं, ये पदार्थ उत्पन्न हुए हैं तो पदार्थ स्वयं ही दूसरे क्षण नहीं ठहरते हैं। इस कारणसे इन सब पदार्थोंका यही स्वभाव है कि अपने क्षणके बाद दूसरे क्षणमें वे ठहर न सकें। यों यह पदार्थ विनाश स्वभावमें नियत है। 'विनाशके प्रति निरपेक्ष होनेसे' यह हमारा स्वभाव हेतु यह सिद्ध कर देता है कि प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होते ही दूसरे क्षणमें समूल नष्ट हो जाता है, वह किसी कारणकी अपेक्षा नहीं रखता। तब यह उपालम्भ देना युक्त नहीं है कि पदार्थमें कोई अपनी प्रकृति खोजना चाहिए। स्पष्ट जाहिर है कि पदार्थोंमें यह प्रकृति पड़ी हुई है कि वे अपने क्षणके बाद दूसरे क्षणमें रहते नहीं हैं। यों विनश्वरशीलताकी प्रकृति प्रत्येक पदार्थमें पड़ी हुई है। यहाँ यह स्वभावहेतु असिद्ध नहीं है, यह प्रमाणसिद्ध है। देखते ही हैं कि जब कोई मुदगर आदिक कलशपर मारता है, वहाँ जो कलशका विनाश हुआ है सो वह कार्य मुदगर आदिकसे भिन्न अथवा अभिन्न कोई कारण नहीं है। बिना ही कारणके कलश आदिकका विनाश होता देखा जाता है। उस समय कलश नष्ट होता हुआ किसीकी अपेक्षा नहीं रखता, यों पदार्थोंमें क्षणिकताकी प्रकृति पड़ी हुई है।

शङ्काकार द्वारा उत्पादकी सहेतुकता व विनाशकी अहेतुकताकी सिद्धिका प्रयास—क्षणिकवादी यहाँ अपने अनुमान प्रयोगमें दिए गये हेतुका समर्थन कर रहे हैं। जो यह अनुमान प्रयोग किया गया है कि जो जिस भावके प्रति निरपेक्ष होता है वह उस भावमें नियत होता है। जैसे यहाँ विनाशके प्रति निरपेक्ष है पदार्थ, इस कारणसे विनाश स्वभावमें नियत पदार्थ कहलायगा। स्वभाव नियत वही कहलाता है कि जिस स्वभावमें रहनेके लिए किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती है, तो यहाँ स्वभाव हेतु बताया गया है कि विनाशके प्रति पदार्थ निरपेक्ष है। सो इस हेतुमें असिद्धता नहीं है। भले ही देखा जारहा है कि घटका मुदगर आदिकके प्रहारसे विनाश होता है, तो लोग ऐसा समझते तो हैं कि मुदगरका प्रहार कारण है और घटका विनाश होगया लेकिन मुदगरके प्रहारसे घटका नाश नहीं होता। घटका नाश तो स्वयं ही दूसरे क्षणमें हो जाता है, पर वहाँ मुदगर आदिकके व्यापारसे खपरियों की उत्पत्ति हुई है, तो उत्पादमें तो हेतु होता है पर विनाशमें हेतु नहीं होता। घटका जो विनाश होता है जिसे मुदगर आदिकने किया है, ऐसा कहा जाय तो यह बतलाओ कि उन मुदगर आदिक कारणोंके द्वारा जो घटका विनाश हुआ वह विनाश घटसे भिन्न है या अभिन्न ? दोनों ही विकल्पोंकी विचारासहता होनेसे कारणों द्वारा विनाशकी सिद्धि की नहीं जा सकती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विनाशको विनश्य पदार्थसे भिन्न माननेपर कारणों द्वारा विनाशकी सिद्धिके अभावका शंकाकार द्वारा कथन—यदि घटका विनाश घटसे भिन्न है और उसीको मुद्गर आदिकने किया तो विनाश किया तो कर दिया, घट तो ज्योंका त्यों रहेगा क्योंकि विनाश तो घटसे भिन्न बताये जा रहे हैं। तो जब घटका कुछ न हुआ, घट ज्योंका त्यों रहा, तो यह घट नष्ट हो गया यह ज्ञान भी न होना चाहिए, क्योंकि घटका विनाश घटसे भिन्न मान लिया गया। फिर वहाँ यह बोध कैसे होगा कि यह घटका विनाश है ? यदि कोई दार्शनिक यह कहे कि विनाशके सम्बन्धसे घट विनष्ट हो गया यह ज्ञान बन जायगा तो फिर वे यह बतलावें कि विनाश और विनाश वालेका कोई सम्बन्ध है क्या ? जैसे विनाशके सम्बन्धसे घट नष्ट हो गया तो विनाश एक अलग पदार्थ हुआ और विनाश वाला अर्थात् वह घट अलग पदार्थ हुआ। तो इन दोनोंमें कोई सम्बन्ध बतायें, तादात्म्य सम्बन्ध तो कह नहीं सकते, क्योंकि घट और विनाशका भेद माना गया है और इस भिन्न हीमें सम्बन्धकी बात कही जा रही है तो तादात्म्य सम्बन्ध भिन्न पदार्थोंमें नहीं हुआ करता। तो घट और विनाश इन दोनोंका सम्बन्ध न बना। यदि कोई दार्शनिक यह कहे कि इसमें तदुत्पत्तिरूप सम्बन्ध बन जायगा याने घटसे घट विनाश हुआ, यों उत्पत्तिरूप सम्बन्ध बन जायगा तो यह कहना भी सही नहीं है। क्योंकि घट स्वयं घटके विनाशका कारण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इस प्रसंगमें तो घट विनाशका कारण मुदगर आदिकको कहा गया है, याने किसी डंडा आदिकके प्रहारसे घटका नाश बताया है तो घटके नाशका कारण तो डंडेका प्रहार बताया गया, घटको कारण तो अब नहीं कहा जा सकता। कोई यह कहे कि घट और मुद्गर आदिक ये दोनों ही कारण बन जायेंगे घटके विनाशमें फिर तो दोष न आयगा, तो यह कथन भी सत्य नहीं बन सकता। कारण यह है कि घटके नाश होनेमें यदि घट और मुद्गर आदिक दोनों ही कारण हैं तो जैसे घटके नाशके बाद मुदगर आदि ज्योंके त्यों पाये जाते हैं ऐसे ही घटके नाशके बाद घट भी ज्योंका त्यों पाया जाना चाहिए, क्योंकि घटके नाशके प्रति दोनों ही कारण बताये गए हैं। तो घटके नाशमें कारण जब दोनों हैं समानरूपसे तो घटके नाशके बाद जैसे मुद्गर, डंडा आदिक पाये जा रहे हैं इसी तरह घट भी पाया जाना चाहिए, किन्तु ऐसा कहाँ है ? घट तो अब पाया नहीं जाता अन्यथा विनाश ही क्या कहलायेगा ? इस कारण यह भी नहीं कह सकते कि घटका विनाश करनेमें कारण घट और पुद्गल दोनों ही हैं। तात्पर्य यह है कि घटका नाश अहेतुक है। पदार्थोंमें स्वयं ऐसा स्वभाव पड़ा है कि उत्तरक्षणमें वह नष्ट हो जाता है। तो यह विनाश अहेतुक है और यही पदार्थकी प्रकृति है।

घटविनाशके उत्तरकालमें घटके दर्शन न होनेकी वार्ताका निराकरण करते हुए शंकाकार द्वारा विनाशको अहेतुक अथवा स्वहेतुक सिद्ध करनेका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकारका पुन. कथन—अब यहाँ कोई दार्शनिक बौद्धोंके प्रति कह रहा है कि घट आदिक कपालादिक परिणामान्तररूप अपने विनाशके प्रति उपादान कारण हैं सो विनाशके उत्तरकालमें घटादिकका दर्शन नहीं होता। परिणामान्तर पैदा हुआ क्योंकि खपरियां बनीं तो खपरियोंके प्रति उपादान कारण है घट इस कारणसे खपरियोंके संशयमें घटका दर्शन नहीं होता। इस सौगतके प्रति जो शंका कर रहे हैं उसका यह भाव है कि अभी सौगतोंने जो यह दोष दिया था कि घटका विनाश यदि घट और मुदगर दोनोंसे होता है तो घट विनाशके बाद मुदगरकी तरह घटकी उपलब्धि होनी चाहिए। सो उसके समाधानमें शंकाकारसे कह रहे हैं कि घटके विनाशके बाद घटकी उपलब्धि यों नहीं होती है कि घटके विनाशमें उपादान कारण है घट, विनाश कहो या खपरियोंका उत्पाद कहो उसमें उपादान कारण होनेसे घटका विनाशरूप कार्यके समझमें दर्शन नहीं होता। क्योंकि उपादान कारण उत्तरक्षणमें नष्ट रहता है ऐसा स्वयं सुगतोंका वचन है। इस कारण यह उपालम्भ नहीं दिया जा सकता। तो इसके समाधानमें बौद्ध यह कहते हैं कि यहां जो परिणामान्तर हुआ है, याने खपरियोंका उत्पाद हुआ है तो उसमें ही हेतुकी अपेक्षा बनी। पर घटके विनाशमें कारणकी अपेक्षा नहीं बनी। याने पुद्गलका परिहार करनेपर खपरियाँ उत्पन्न हुई हैं, घटका विवाश नहीं हुआ। घटका विनाश तो घटके ही स्वभावके कारण हो गया है, क्योंकि कपाल जो परिणति बनी है वह तो कहलाती है घटका उत्तरक्षण और उस उत्तरक्षणको उत्पन्न करने वाला हेतु है समनन्तर घट अर्थात् उन खपरियोंसे पहिले जो पदार्थ हैं घट वह है खपरियोंका उपादानकारण तो वह उपादान हुआ घट उससे अलग जो हेतु है मुदगर आदिक सो विनाश उसकी अपेक्षा नहीं रखता अर्थात् घटका विनाश मुदगरके द्वारा नहीं हुआ है और खपरियोंकी उत्पत्तिमें उपादानकारण घट है, सो उपादानकारणकी दृष्टिसे खपरियोंने भी मुदगर आदिककी अपेक्षा नहीं रखी। तो यों विनाश घटके (स्वयंके) अतिरिक्त अन्य हेतुओंकी अपेक्षा नहीं रखता है, ऐसा मान लेनेपर तो सुगतमतकी ही सिद्धि होती है। सुगतमतमें विनाश व्यवस्था निर्हेतुक नहीं कही गई है, किन्तु उसका मतलब समझना चाहिए। वह क्या मतलब है कि कार्यको उत्पन्न करने वाले जो हेतु हैं अर्थात् यहाँ प्रकृतमें कार्य है खपरियोंका होना, उसका जनक हेतु है उपादान घट, तो कार्यजनक हेतुसे भिन्न हेतुकी अपेक्षा नहीं करता है विनाश। जैसे प्रकृतमें घटके अतिरिक्त अन्य हेतुवोंकी अपेक्षा नहीं रखता है घटका विनाश यह है हेतुकी अपेक्षा न रखनेका अर्थ और इस अर्थको समझ लेनेपर फिर नैयायिकादिने जो यह विवाद रखा था कि विनाश भिन्न हेतुओंसे होता है यह विवाद खतम हो जाता है। यहाँ यह बात स्पष्टतया समझ लेनी चाहिए कि घटका जो विनाश हुआ है वह घटको छोड़कर अन्य हेतुओंकी अपेक्षा रख कर नहीं हुआ है, और घटका विनाश घटकी अपेक्षा रखे, यह कोई हेतु कहलाता नहीं स्वयं स्वयंका हेतु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या होगा ? तो यों विनाश अहेतुक है, उसका अर्थ यह समझना चाहिए कि विनाश स्वयं जिसका हुआ है उसके अतिरिक्त अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता। अन्यकी अपेक्षा तो खपरियोंके उत्पादके लिए हुई हैं। तो यों कपालकी उत्पत्ति तो सहेतुक है मगर घटका विनाश सहेतुक नहीं है। तो जब विनाश और विनाशवानका कोई सम्बन्ध नहीं बनता तो यह नहीं कहा जा सकता कि मुदगर आदिकके द्वारा घटका विनाश किया गया।

विनाश व विनाशवानमें अन्य सम्बन्धोंके अभावकी तरह विशेष्य विशेषणभाव सम्बन्धका भी अभाव होनेसे विनाशवानसे भिन्न विनाशकी असिद्धि होनेसे विनाशकी अहेतुकताकी सिद्धिकी शङ्का—यहाँ नैयायिक पुनः कहते हैं कि विनाश और विनाशपना विशेषणविशेष्य भावका सम्बन्ध तो बन जायगा विनाश तो विशेष्य हुआ और घट विशेषण हुआ। किसका विनाश ? तो यों विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्धके कारणसे विनाश और विनाशवानमें सम्बन्ध बन जायगा इस बातपर बौद्ध उत्तर देते हैं कि यह कथन भी मिथ्या है, क्योंकि जो परस्पर असम्बद्ध है, जब विनाश घटसे बिल्कुल निराला है तो उसमें विशेष्यविशेषण भाव सम्बन्ध बन नहीं सकता। जैसे हिमालय और विन्ध्याचल ये दोनों पर्वत न्यारे-न्यारे हैं तो इनमें क्या विशेषण विशेष्यकी बात कही जा सकती है ? नहीं ! तो यों जब विनाश को घटसे भिन्न स्वीकार कर लिया तो वहाँ विशेष्य विशेषण भाव सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता और इसी कारण प्रागभाव और प्रागभावपनमें विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध कोई कहे तो वह भी निराकृत हो जाता है। कोई भी शङ्काकार किसी भी प्रकार यह न कह सकेगा कि कार्य और कारणके बीचमें इसका यह कार्य है, यों विशेषण विशेष्य भाव बन जायगा। सो यह किसी भी प्रकार नहीं कह सकते, क्योंकि उस कार्यकारणभावमें उसका है यह ऐसा व्यवहार तो कार्यकारणभावपूर्वक होता है, न कि विशेषण विशेष्यभावके कारण ! जो यह कहा जाता है कि यह घटका विनाश है तो यह व्यवहार कार्यकारणभावके कारण बना है, पर विशेषण विशेष्यभाव के कारण नहीं बना। कार्यकारण भावसे बना है, इसका भी अर्थ इतना ही है कि घटके विनाशका कारण घट है, बस इस कार्यकारणभावके कारण घटका विनाश हुआ, ऐसा व्यवहार कहा जाता है पर उनमें विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध नहीं पाया जाता। परस्पर सम्बन्धमें आया हुआ कार्यकारणभाव भावको छोड़कर अन्य कोई पदार्थोंमें विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध नहीं होता याने परस्पर सम्बन्ध जो कुछ भी कहा जायगा, जहाँ कहीं भी, कार्यकारणभावरूप सम्बन्ध कहा जायगा। कार्यकारण भावके अतिरिक्त अन्य प्रकारका सम्बन्ध पदार्थोंमें होता नहीं है। इस कारण मुदगर आदिकके द्वारा घटका जो विनाश हुआ है वह घटसे भिन्न हुआ है, यह कथन किसी प्रकार भी युक्त नही है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विनाशको विनाशवानसे अभिन्न माननेके पक्षमें कारणसे विनाशको सिद्धि न होनेसे विनाशकी अहेतुकताका शङ्काकार द्वारा उपसंहार—यदि कोई दूसरा पक्ष ले लें कि मुदगर आदिक कारणोंके द्वारा घटसे अभिन्न घटका विनाश किया गया है। तो यह कहना भी समीचीन नहीं है, क्योंकि अपने कारणसे उत्पन्न हुआ अर्थात् मृतपिण्डसे उत्पन्न हुआ घटात्मक जो घटका विनाश है उसके लिए अब अन्य कारण व्यर्थ हो जाते हैं याने घटके विनाशको माना है घटरूप और वह है पिंड कारणसे तो मृतपिण्ड कारणसे ही घटका अभाव हुआ। और, अभाव घटसे अभिन्न है तब वहाँ अन्य कारण मुदगर आदिक क्या करेंगे ? अन्यथा अर्थात् घटका विनाश स्वयं असिद्ध होता है, तिसपर भी अन्य कारण मानोगे तो फिर अन्य अन्य कारण मानते जावो कहीं भी उन कारणोंका विराम नहीं हो सकता, इस कारण यह सिद्ध हुआ कि घटका विनाश घटके ही कारणसे है और घटमें ही ऐसी प्रकृति पड़ी हुई है कि वह उत्तरक्षणमें अपना अभाव करले। यों भावोंमें अपनी प्रकृति सिद्ध होती है। क्षणिकवादी दार्शनिकोंने विनश्वरताके प्रति निरपेक्षता होनेसे यह साधन बताकर पदार्थोंकी प्रकृति विनाशशीलताकी बताई।

पदार्थकी स्थायिताकी प्रकृति बताते हुए उक्त शङ्काओंका समाधान—अब उक्त शङ्काओंपर स्याद्वादी कहते हैं कि पदार्थोंकी विनश्वर प्रकृति सिद्ध करनेके लिए शङ्काकारने जो हेतु दिया है, ठीक इसी प्रकारके हेतुसे पदार्थकी स्थिति भी अहेतुक सिद्ध हो जाती है और इससे सिद्ध होता है कि पदार्थकी प्रकृति स्थिर रहनेकी भी है। इसी प्रसङ्गको क्षणिकवादियोंकी ओरसे यों भी सिद्ध कर लिया जा सकता है कि क्षणिकवादी पदार्थको एक समयकी स्थिति मानते हैं। ऐसी एक समयकी स्थिति सिद्ध करनेके लिए भी यह हेतु क्षणिकवादियोंके काम आ सकता है अर्थात् एक समय की स्थिति होने वाला पदार्थ किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता। इस कारण एक समयकी स्थिति पदार्थके अहेतुक है और पदार्थोंकी प्रकृति उस समय स्थित रहनेकी है, यह तो क्षणिकवादी सिद्ध करलेंगे और स्याद्वादी इसी हेतुसे सदाके लिए पदार्थ स्थित रहा करें, यह सिद्ध कर सकते हैं। उस ही बातको अब अनुमान प्रयोग द्वारा सिद्ध किया जा रहा है। पदार्थ स्थितिके स्वभावमें नियत है, क्योंकि स्थितिस्वभाव होनेके लिए अन्य पदार्थकी निरपेक्षता रहती है अर्थात् किसी भी अन्य पदार्थके द्वारा पदार्थकी स्थिति नहीं की जाती है। इससे सिद्ध है कि पदार्थ स्थितिस्वभावमें नियत है। जैसे कि क्षणिकवादियोंने कहा था कि विनाशके प्रति अन्यकी अपेक्षा नहीं होती, इस कारण पदार्थका स्वभाव विनश्वरताका है। इसी प्रकार यहाँ भी कहा जा सकता है कि स्थितिके प्रति भी अन्यकी अपेक्षा नहीं होती है। इस कारण पदार्थ स्थिरस्वभावी है। इस प्रकार स्वभाव हेतुके द्वारा पदार्थका स्थित स्वभाव सिद्ध होता है, यह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि स्थिरताके प्रति जो कुछ भी कारण कोई कहे वह कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थिरताके लिए अकिञ्चितकर है अर्थात् कुछ भी नहीं करता। सो किस प्रकार है ? इसे सुनो !

पदार्थस्थितिकी सहेतुकताकी असिद्धिका विवरण—किसी अन्य पदार्थने यदि पदार्थकी स्थिरता उत्पन्न की तो यह बतलायें वे दार्शनिक कि पदार्थकी स्थिरता पदार्थसे भिन्न की गई या पदार्थसे अभिन्न की गई ? ये दोनों ही विकल्प सब पहिलेकी तरह यहाँ भी घटित हो जाते हैं। जैसे पदार्थका विनाश किसी अन्य पदार्थके द्वारा नहीं किया गया यह सिद्ध करनेके लिए दो विकल्प किए गए थे कि यदि किसी हेतुने पदार्थका विनाश किया तो उस हेतुने पदार्थसे भिन्न विनाशको किया या पदार्थसे अभिन्न विनाशको किया ? उसी प्रकार यहाँ ये दो विकल्प किए जाते हैं। अब उनपर क्रमसे विचार कीजिये ! कोई यदि यह कहे कि स्थितिके कारणभूत अन्य पदार्थके द्वारा पदार्थसे भिन्न स्थिति की गई है और पदार्थकी जो स्थिति की गई वह पदार्थसे भिन्न है ऐसा माननेपर तो यह सिद्ध हो गया कि वह पदार्थ स्वयं स्थायी नहीं है, क्योंकि स्थायित्वको स्थित पदार्थसे भिन्न स्वीकार कर रहे हैं। तो जब पदार्थ स्थायी न रहा, स्थायिता भिन्न हो गई तो अब वहाँ यह व्यपदेश नहीं बन सकता कि यह स्थिति उस पदार्थकी है। यदि कोई यह कहे कि स्थितिके सम्बन्धसे पदार्थकी स्थायिता सिद्ध हो जायगी अर्थात् यह स्थिति इस पदार्थकी है, ऐसा सम्बन्ध बन जायगा, तो यह भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि स्थिति और स्थितिवानमें कोई सा भी संबंध नहीं बनाया जा सकता।

स्थिति व स्थितिवानमें कार्यकारणभाव सम्बन्धकी असंभवता—स्थिति व स्थितिवानमें कार्यकारण भाव तो असम्भव है क्योंकि स्थिति और स्थितिवान ये दोनों ही एक साथ रह रहे हैं। जो एक साथ रह रहे हों उनमें कार्य कारण भाव नहीं होता। यह उत्तर उपादानकी दृष्टिसे दिया जा रहा है, उपादानकारण और उसका कार्य ये दोनों एक समयमें नहीं होते। कारण पहिले होता है कार्य पश्चात् होता है अर्थात् जब स्थिति और स्थितिवान ये इसके साथ हैं तो उनमें कार्य कारणभाव सम्भव हो नहीं सकता। यदि कोई यह कह बैठे कि स्थिति और स्थितिवान ये दोनों एक साथ नहीं हैं, यों यदि उनमें असद्भाव माना जाय तब तो स्थिति से पहिले स्थितिके कारणकी असिद्धि हो बैठेगी। ऐसी स्थिति और स्थितिवान एक साथ माने नहीं जा रहे, तो इसके मायने यह हुआ कि स्थितिसे पहिले वह वस्तु जिसे स्थितिवान कहा जायगा, वह रहेगा ही नहीं औरर स्थिति भी अपने कारणके उत्तर कालमें अर्थात् पश्चात् समयमें अनाश्रित हो जायगी क्योंकि स्थिति और स्थितिवान एक साथ तो रहे नहीं। जब स्थितिवान होगा तब स्थिति न रहेगी। तो स्थितियोंको कभी वस्तुका आश्रय ही नहीं मिल सकता, तो यों स्थिति स्थितिवानमें कार्यकारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावका सम्बन्ध बताकर यह स्थिति इस वस्तुकी है यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

हेतु द्वारा कृत माने गए स्थिति व स्थितिवानमें आश्रयाश्रयीभाव सम्बन्धका अभाव—कोई दार्शनिक कहता है कि तब फिर स्थिति स्थितिवानमें आश्रय आश्रयीभावका सम्बन्ध मान लिया जाय। याने स्थितिवानके सहारेमें स्थित रह रहे हैं, ऐसा मान लिया जाय तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि भिन्न भिन्न स्थिति और स्थितिवानमें जिसका कि एक पक्ष चल रहा है, उन भिन्न भिन्न तत्त्वोंमें कार्य कारणभाव तो रहा न था। तो जब कार्यकारण भाव न रहा तो आश्रय आश्रयका अभाव भी न रह सकेगा। जैसे मटका और बेर। मटकामें बेर रखा है तो लोग कहते हैं कि मटका तो आधार है और बेर उसके आधारमें है तो यहां मटकेके जो अवयव हैं वे मटकेके कारण हैं और मटकेके अवयवी हैं। वह मटका उन अवयवोंका कार्य है तो यों कार्य कारण भाव मटकामें स्वयं एक उस अवयव अवयवीकी दृष्टिसे पाया जाता है इसी प्रकार बेरके अवयव कारण हैं और अवयवी बेर कार्य है तो बेर में खुद कारण कार्यभाव पाया जाता। इसी प्रकार मटका और बेर ये दोनों अपने अपने स्वरूपसे कार्य कारण भावके कारण निष्पन्न हुए हैं अतएव उनमें तो आश्रय आश्रयी भाव सम्बन्ध बन जाता है। क्योंकि वह स्वयं सद्भूत है। पर ऐसी बात प्रकृति स्थिति और स्थितिवानकी तो नहीं है। तो स्थिति अपने कारणसे प्रकट हुई हो। स्थितिवान अपने कारणसे प्रकट हुआ हो तो फिर उनमें आश्रय सम्बन्ध बताया जाय ऐसी बात तो नहीं है। इस कारण स्थिति और स्थितियानमें आश्रय आश्रयी-भाव सम्बन्ध भी नहीं कहा जा सकता। अब दूसरे पक्षकी बात सुनो!

सहेतुक मानी गई स्थितिको स्थितिवानसे अभिन्न माननेपर भी व्यवस्थाका अभाव होनेसे पदार्थस्थिति अहेतुकताकी सिद्धि यदि कोई यह कहे कि स्थितिके कारणने स्थिति जो बनाया वह स्थिति पदार्थसे अभिन्न है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा पक्ष लेना भी उचित नहीं है। क्योंकि स्थितिसे अभिन्न है वह पदार्थ तो फिर स्थितिके कारणोंका मिलाना व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि वहां यह बतायें कि वह पदार्थ स्थिति स्वभाव वाला है या स्वयं अस्थित स्वभाव वाला है। याने पदार्थ ठहरा रहे ऐसा उसमें स्वभाव खुद पाया जा रहा है। या पदार्थ ठहरा रहे ऐसा स्वभाव उस पदार्थमें नहीं है। यदि कहो कि वह पदार्थ स्थिर स्वभाव वाला है और उसकी हीं स्थिति कारणोंने की है तो जब स्थिर स्वभाव वाले पदार्थकी भी स्थिति स्थितिके कारण करने लगे तो फिर स्थिरताके कारणोंका कहीं विराम नहीं हो सकता। फिर बतायें कि स्थितिके कारणभूत जो पदार्थ हैं उनकी स्थिति भी अन्य कारणोंसे होगी। तो यों अनवस्था दोष आयगा। यदि कहें वे दार्शनिक कि पदार्थ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो स्वयं अस्थिरस्वभाव वाले हैं याने उसमें ध्रुवता रहे, ऐसा स्वभाव नहीं पाया जाता। उसकी स्थितिको स्थितिके हेतुभूत पदार्थोंने किया तो यह बात बिल्कुल अयुक्त है। जिसमें स्थिरताका स्वभाव नहीं है, उसकी स्थिरता कभी की ही नहीं जा सकती। किन्हीं भी हेतुवों द्वारा, जैसे कि जिसकी उत्पत्तिका स्वभाव नहीं है उसकी उत्पत्ति की जानेका योग हो ही नहीं सकता। यों ही जब पदार्थमें ध्रुवताका स्वभाव नहीं है तो वह पदार्थ कभी स्थिर किया ही न जा सकेगा। तो यों तब न तो वस्तुसे भिन्न स्थिति की जा सकी न वस्तुसे अभिन्न स्थिति किसी अन्य पदार्थके द्वारा की जा सकी तो इससे यह निर्णय मान लेना चाहिए कि पदार्थ सदा स्थित-स्वभावमें नियत है। यों कि उसकी स्थिति अहेतुक है। यह सब विवरण यदि क्षणिक-वादियोंकी ओरसे कहा जाय तो उसके अभिमत एक समयकी स्थितिको अहेतुक सिद्ध करना चाहिए और स्याद्वादियोंकी ओरसे बताया जाय तो उस वस्तुकी स्थितिको सदा कहना चाहिए। लेकिन स्याद्वादियोंकी शाश्वतिक यह स्थिति सर्वथा नहीं, किन्तु द्रव्य अपेक्षासे है। परिणति तो फिर भी वस्तुमें होती ही रहती है।

शब्द विद्युत आदि सब पदार्थोंमें द्रव्यापेक्षया स्थायित्वकी सिद्धि— उक्त प्रकरण तक यह सिद्धि की गई कि पदार्थ स्थितिस्वभावमें नियत है और इस प्रकार शब्द विद्युत प्रदीप आदिकमें भी जैसे कि पहिली स्थिति देखी गई उसी प्रकार अन्तमें भी इसकी स्थिति रहती है। उसका अनुमान करना युक्तिसंगत नहीं है याने शब्द बिजली प्रदीप लोगोंको ये अवसर आगे दिखते नहीं हैं। शब्द हुए मिट गए, बिजली चमकी मिट गयी। प्रदीप चमका अब कुछ न रहा। तो यों लोग उसे क्षणिक मान लेते हैं कि इसकी भी स्थिति आगे रहती है। इस हालतमें न रहे, अन्य हालतमें रहे, मगर जब तक प्रारम्भमें स्थितिका दर्शन हो तब यह सिद्ध है कि इसके अन्तमें भी स्थिरता रहती है। अन्यथा यदि आदिमें स्थितिका दर्शन होनेसे अन्तमें स्थिति न मानी जाय। तो अन्तमें क्षणिकताका दर्शन होनेसे फिर आदिमें भी क्षणि-कता प्रतिपत्ति घपलेमें पड़ जायगी। वह भी नहीं हो सकती। इस कारण जिस तरह क्षणिकवादी दार्शनिक अन्त समयमें क्षणिकता देखता है उससे वे आदि समयमें भी क्षणिकता मान लेते हैं। सो यदि यों क्षणिकता मानें तो आदिमें स्थिति देखनेसे अन्तमें भी स्थितिका मानना अवश्यंभावी होगा। तब जैसे शब्द विद्युत आदिकका उत्पत्तिके प्रति कथंचित् उपादानका अनुमान कर लिया जाता है क्षणिकवादियोंके द्वारा इसी प्रकार जब आदिमें स्थिति वाले पदार्थ हैं तो उनकी उत्पत्तिका कारण न देखनेपर भी वहां जैसे उपादानका अनुमान किया जाता इसी तरह उस पदार्थके कार्यसंतानकी स्थिति भी जो देखी नहीं गई उसका भी अनुमान कर लेना चाहिए। याने शब्द विद्युत आदिक हैं तो इनके मिटनेपर भी इनके मूल द्रव्यका आगे अवस्थान बना रहता है। देखिये, यह तो अपने पक्षके आग्रहकी बात होगी कि शब्द विद्युत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आदिकका उपादान साक्षात् पाया नहीं जाता फिर भी इस डरसे कि कहीं अहेतुक उत्पाद न सिद्ध हो जाय सो उसका उपादान तो मान लेते हैं और अब अवस्तुत्वका प्रसंग न आ जाय इस भयसे शब्द विद्युत आदिकका उत्तर कार्य नहीं मानते, यह तो महान मोहके विलासकी बात होगी। क्षणिकवादी शब्द विद्युत आदिकका उपादान कारण मानते हैं। यों मानते हैं कि उत्पादको सहेतुक मानते हैं सो उसका हेतु सिद्ध करनेके लिए उपादान कारण मानते हैं, परन्तु पदार्थका उत्तरकार्य नहीं मानते, क्योंकि यदि उसका कार्य कारण हो गया तो क्षणिक न रहेगा और जो क्षणिक नहीं है वह अवस्तु है, तो कहीं उसमें अवस्तुपना आ जाय इस कारण उसका उत्तर कार्य नही मानते। यह तो महान मोहके विलासकी बात होगी, ऐसा पक्ष न करना चाहिए, अतः भावको स्थायी मानना चाहिये और उसमें प्रति समय परिणतियाँ होती हैं, वे परिणतियाँ क्षणिक हैं ऐसा सिद्धांत मानना चाहिए।

योगिज्ञानकारिता होनेसे शब्दादिकमें अर्थक्रिया माननेपर आस्वाद्यमानरसकालमें रूपके न किये जानेपर भी रूपोपादानमें रसोत्पादकारणत्वका प्रसङ्ग—क्षणिकवादी शङ्काकार कहता है कि शब्दादिक यद्यपि उत्तरकार्यको नहीं करते हैं तो भी वे शब्दादिक योगिज्ञानके कारण हैं, क्योंकि जितने ज्ञान होते हैं वे पदार्थसे उत्पन्न होते हैं और योगी सब कुछ जानते हैं। तो शब्दादिकका भी ज्ञान योगियोंको होता है। तो यों योगियोंके ज्ञानको करने वाले हैं शब्दादिक इस कारण उसे अवस्तु न कह सकेंगे। अवस्तु तो वह कहलायेगा जो अर्थक्रियाको न करे, किंतु शब्दादिकने तो योगिज्ञानको उत्पन्न कर दिया सो उसका कार्य योगिज्ञान हुआ। तो कार्यको करनेसे अब शब्द आदिकको अवस्तु न कह सकेंगे। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो इस तरह यहाँ भी समझ लीजिये कि जिस समय फलके रसका आस्वादन किया जा रहा है याने पूर्वरूपक्षण है वह रूपको भी न करे और रसका सहकारी बन जाय, ऐसा प्रसङ्ग आ जायगा, क्योंकि अब तो यह मान लिया है कि उत्तरकार्यको न करनेपर भी योगिज्ञानका कारण शब्दादिक बन गया है। जैसे कि आमका रस चूसा जाये अंधकारमें तो वहाँ यह कहा जा सकेगा कि स्वादा तो जा रहा है रस, सो वहाँ उसका रसक्षण पड़ा है, किंतु उस समय रूपोपादान भी है सो वह रूपको न करके भी रसका सहकारी बन बैठेगा। सो वह अवस्तु भी न रहेगा और रूपको करने वाला भी न रहेगा। और जब रूपका करने वाला न रहा पूर्वरूपक्षण तो इससे रूपका अनुमान न बन सकेगा, तो अनिष्ट आपत्ति आयगी। लेकिन मानते तो हैं रससे रूप का अनुमान। जैसे क्षणिकवादियोंका यह अनुमान है कि इस आम्र फलमें रूप है अन्यथा रस भी न हो सकता था इसी प्रकार उत्तररूपके न करनेसे जैसा कि इस प्रसङ्गमें बताया गया है। तो उत्तर रसके समयमें रूपका तो सत्त्व ही न रहा, क्योंकि अब तो यह मान लिया कि उत्तरक्षणको न भी करे कोई पदार्थ तो भी योगिज्ञानका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण होनेसे वह कार्यकारी वस्तु बन जाता है। तो उत्तरक्षणमें तो रूपको किया नहीं तो उत्तर रसके समयमें जब रूपका सत्त्व न रहा तो उसका अनुमान फिर नहीं हो सकता है।

रूपसे रसकी शब्दसे शब्दकी उत्पत्ति माननेपर पदार्थकी द्रव्यापेक्षया स्थिरताकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि रूपके न किये जानेपर भी रूपक्षणमें रसोत्पादके प्रसङ्गकी बात कैसे कह रहे हो ? रूपसे रूप उत्पन्न होता है, यह बात तो देखी जा रही है। सजातीय उत्तर कार्य तो होते ही हैं उपादानसे इसलिए यहाँ अनिष्ट प्रसङ्ग न आयगा, रसके आस्वादनके सम्बन्धमें रूपका अनुमान नहीं बन सकता यह आपत्ति न आयगी। तो इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि जब यह मान लिया कि रूपउपादानसे उत्तररूपक्षण उत्पन्न होता है तो क्या यहाँ भी शब्दसे ही शब्दकी उत्पत्ति कहीं देखी गई है। क्योंकि शब्दका उपादान है तो उससे भी उत्तर शब्दकी उत्पत्ति बताना चाहिए। शङ्काकार कहता है कि देखिये ! शब्दसे भी शब्दकी उत्पत्ति मानी गई है। जब शङ्खादिकका शब्द उत्पन्न किया जा रहा है, शङ्ख बजाया जा रहा है तो शङ्खमें शब्द कोई एक मिनट तक चल रहा है तो मध्य अवस्थित शब्दसे ही शब्दकी उत्पत्ति देखी जा रही है। शब्दके बाद शब्द निकलते जा रहे हैं सो पूर्वशब्द उपादान हुआ और उत्तर शब्द कार्य हो गया तो वहाँ तो शब्दसे ही शब्दकी उत्पत्ति देखी गई। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि फिर उत्तर शब्दकी उत्पत्ति अदृष्ट कैसे रही ? फिर उसको मना क्यों किया पहिली शंकामें कि शब्दादिकसे उसका उत्तर कार्य नहीं हो रहा, फिर भी योगिज्ञानका कारण होनेसे शब्द वस्तु बना रहेगा। इस तरह घुमा फिरा करके फिर शब्दसे उत्तर शब्दकी उत्पत्ति अदृष्ट क्यों बताई गई ? फिर तो शब्दसे उत्तर शब्दकी उत्पत्ति अदृष्ट रहेगी ना ! शंकाकार कहता है कि वहाँ ऐसा ही देखा जा रहा है। शब्दसे स्वभावकी उत्पत्ति यहाँ शङ्ख आदिकमें बराबर सबकी अनुभूति आ रही है कि लो शब्दके बाद शब्द निकलते जा रहे हैं। यों शब्दसे शब्दकी प्रधानतारूपसे उत्पत्ति हो रही है तो इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तब तो फिर यहाँ भी यह मानलो कि शब्दादिक सर्वत्र उत्तर शब्दादिकको करते हैं। जैसे शब्दादिक योगज्ञानके द्वारा बन जाते हैं याने शब्दादिकसे योगिज्ञान कार्य कर लिया जाता है तो शब्दादिकसे उत्तर शब्दादिकका करना भी मान लीजिये ! जैसे कि रूप उपादानसे रूपकी उत्पत्ति मानी गई है और जब यों शब्दसे उत्तर शब्द की उत्पत्ति मान लोगे तो पदार्थकी स्थायिता सिद्ध हो जाती है। द्रव्यापेक्षासे पदार्थ सदाकाल रहता है और उस ही पदार्थमें परिणतियाँ होती रहती हैं। तब क्षणिक एकान्तकी बात न रह सकेगी। और यह मानना हो जायगा कि द्रव्य अपेक्षासे पदार्थ सदा रहता है और उसमें फिर प्रति समयमें विवर्त होता रहता है, परिणमन होता रहता है अन्यथा अस्तित्व नहीं हो सकता। याने पदार्थको द्रव्यापेक्षया स्थित न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय तो उसमें विवर्त भी नहीं बन सकता। जैसे कि आकाशपुष्प। इसका सत्त्व नहीं है। यह द्रव्यापेक्ष्य स्थितमान नहीं है तो उसमें विवर्त नहीं बनता कि आकाश फूलका कोई काम बने, कोई माला पहिन ले या उसमें सुगंध निकले, आदिक कुछ भी नित्य बातें नहीं बनती। इससे मानना होगा कि पदार्थ द्रव्यकी अपेक्षासे स्थितिमान है तब उसमें विवर्त सम्भव होता है।

ज्ञानाद्वैतके एकान्तमें भी परलोकादिके अभावका प्रसंग—अब ज्ञानाद्वैतवादी शंकाकार कहता है कि परमार्थसे कार्य कारणभावका ही अभाव है। जैसे कि विरोध्यविरोधकभावका अभाव है उसी प्रकार कार्यकारणभावका भी अभाव है, क्योंकि तत्त्व तो एक ज्ञानाद्वैत है। अद्वैतमें कार्यकारणभावकी गुञ्जाइश कहाँ है? यदि परमार्थसे देखा जाय तो कार्यकारणभावका अभाव होनेसे प्रतिक्षण विवर्त भी मानना इष्ट नहीं है, क्योंकि ज्ञानाद्वैत ही माना गया है तत्त्व। ऐसे ज्ञानाद्वैत मानने वाले शङ्काकारसे समाधानमें कह रहे हैं कि यदि ऐसी विधि कर रहे हो कि परमार्थसे एक ज्ञानाद्वैत ही है, वहाँ कार्यकारणभाव नहीं और प्रतिक्षण परिणमन भी नहीं है, तब तो कार्यकारणभावकी ही उत्पत्ति जब न रही तो परलोक आदिक कैसे सिद्ध होंगे, किंतु तुम शङ्काकार परलोक आदिक मानते हो किसी भी ढङ्गसे, तो देखो! स्याद्वादियोंके द्वारा जो कि क्षणिकवादियोंके प्रति दोष दिखाया जा रहा था कि परलोकका अभाव हो जायगा, परलोक, पुण्य पाप, क्रिया, बंध-मोक्ष और मोक्षका फल ये कुछ भी न रहेंगे। ऐसा दूषण जो स्याद्वादियोंके द्वारा क्षणैकान्तमें दिया जा रहा था उस दूषणको इस शङ्काकारने स्वयं ही दूर करके अपने मुखसे उगल दिया। स्वयं ही मान लिया किया कि अब वहाँ कार्यकारणभाव नहीं है। और परलोक पुण्य-पाप आदिक कुछ भी नहीं हैं। तो यों योगाचारके वचन अत्यन्त भयभीत हो जानेसे झट यों निकल ही गए जिससे उनके अनिष्टकी सिद्धि उनके वचनसे हो गई। और भी देखिये! जो ज्ञानाद्वैत है वह किसीका साधन नहीं बन सकता, क्योंकि जो अद्वैत मात्र है वह किसी भी कार्यका कारण न बनेगा, और जब ज्ञानाद्वैत तत्त्व अपने कार्यको नहीं कर सकता अर्थात् वह ज्ञानाद्वैत उत्तरज्ञानके कार्यको भी नहीं कर सकता, क्योंकि वह अब किसीका साधन न रहा। वहाँ कार्यकारणभाव माना नहीं जा रहा। तो ज्ञानक्षण उत्तर ज्ञानक्षणको कर ही न सकेगा तब वह अर्थक्रियाकारी तो न रहा, और जब अर्थक्रियाकारी न रहा तो वस्तुपना भी न रहा। जब वस्तुपना न रहा तो ज्ञानाद्वैत भी सिद्ध नहीं हो सकता नित्यत्वकी तरह। जैसे क्षणिकवादी नित्यत्वैकांतमें कार्यकारणभावकी गुञ्जाइस न बताकर अर्थक्रियाका विरोध करते हैं और उससे नित्यके वस्तुत्व नहीं मानते हैं तो ऐसे ही यहाँ ज्ञानमात्र तत्त्वमें भी जहाँ कार्यकारण भाव नहीं माना अर्थक्रिया न बननेसे यह भी वस्तु सत् न रहेगा। यदि इस ज्ञानमात्र तत्त्वको संविद् अद्वैतको अपना कार्य करने वाला मान लेते हो अर्थात् वह उत्तरको

http://sahjanandvarnishastra.org/

याने नवीन कार्यको उत्तर ज्ञानक्षणको उत्पन्न करता है, ऐसा स्वीकार यदि कर लेते हो तो उसमें कार्यकारण स्वभाव सिद्ध हो जाता है। तब द्वैतपना आ गया। यों संविद् अद्वैत न रहा।

भेदभ्रान्ति व ज्ञानमें बाध्यबाधकभावरूप द्वैतको स्वीकार किये बिना ज्ञानाद्वैतके स्वरूपकी व्यवस्थाका अभाव—और भी देखिये ! संविद् द्वैत भेदकी भ्रान्तिको बाधित करता है या नहीं ? याने तत्त्व तो स्थित किया ज्ञानाद्वैतने। अब वह ज्ञानाद्वैत तत्त्व सत्य है और भेदकी भ्रान्ति असत्य है। यही तो सिद्ध करना आवश्यक हो गया ! तो ज्ञानाद्वैतके द्वारा भेद भ्रान्तिसे बाधा आती है, यह मानते हो या यह मानते हो कि भेदभ्रान्तिमें वह बाधा नहीं देता। यदि भेदभ्रान्तिमें बाधा आती है तो बाध्यबाधक भाव सिद्ध हो गया याने संविद् द्वैत तो बाधक है और भेदका भ्रम बाध्य है याने ज्ञानमात्र तत्त्व सिद्ध करके भेदका भ्रम खतम कर दिया गया। तो लो बाध्यबाधक भाव बन गया, द्वैत हो गया। यदि कहो कि संविद् द्वैतके द्वारा भेद भ्रमको बाधा नहीं दी जाती, तो लो भेदभ्रम व्यवस्थित रहा, ज्योंका त्यों रहा, उसमें बाधा तो दी नहीं जा सकती। तो ज्ञानाद्वैत भी सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञानाद्वैतमें अब अपने प्रतिपक्षभूत भेदभ्रमका व्यवच्छेद न कर पाया। तो जहाँ भेद भ्रमका व्यवच्छेद न हो सके वहाँ कैसे कहा जा सकता कि यह ज्ञानाद्वैत तत्व है।

कल्पनामात्रसे कार्यकारणभाव माननेपर सन्तानत्वके अभावका व अव्यवस्थाका प्रसङ्ग—यदि क्षणिकवादी यह कहे कि कल्पना मात्र वहाँ कारण-कार्यभाव बन जायगा तो कल्पनामात्रसे कार्यकारण भावकी बात माननेपर तो यह दोष आयगा कि जैसे जो कारण, नहीं, जो कार्य नहीं अथवा अन्य कारण है, अन्य कार्य है, उनकी जैसे परम्परामें संतति नहीं बनती, इसी प्रकार कल्पना मात्रसे कार्य-कारणभाव माननेपर भी संतति न बन सकेगी, क्योंकि जैसे घट पटका तादात्म्य नहीं है तो घटपटमें एक संतति नहीं बन सकती। इसी प्रकार प्रत्येक क्षणोंमें जब तादात्म्य नहीं माना जा रहा तो उसमें भी एक संतति सिद्ध नहीं हो सकती। कारणक्षण में और कार्यक्षणमें तादात्म्य न माननेका आग्रह करनेपर अर्थात् जिस उपादानमें कार्य हुआ है, उसके उस पदार्थमें एकत्व न माननेपर तो अन्य कार्य और अन्य कियावों में, अन्य कारण और अन्य कारणोंमें जैसे तादात्म्य नहीं है, ऐसे ही यहाँ भी तादात्म्य न रहा तो फिर इसका यह कार्य है, ऐसा सिद्ध करनेके लिए कोई भी विशेषता नहीं बताई जा सकती। इसमें निरन्तरताकी विशेषता बताई जायगी कि मृतपिण्ड घटमें निरन्तरता है। मृतपिण्डके बाद घट बन गया है, इस कारण यहाँ विशेषता है, इस प्रकार यदि निरन्तरता संतति आदिककी कोई विशेषता बताये तो वह विशेषता नियामक न बनेगी, क्योंकि ऐसी विशेषता तो भिन्न संतानमें होने वाले कार्यकारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणोंमें भी पाई जाती है। जैसे बहुतसे पुरुषोंके कार्य हो रहे हैं और वे निरन्तर हो रहे हैं अथवा जैसे जो भक्तजन हैं उनका ज्ञानक्षण और सुगतके ज्ञानक्षण तो भक्तजनों के ज्ञानको सुगत जानता है तो सुगतके ज्ञानकी उत्पत्ति उन भक्तजनोंके ज्ञानसे हुई ना, तो इसमें निरन्तरता आ गई। लेकिन कार्यकारणभाव कहाँ बताया गया है ? इस कारण कथंचित् तादात्म्य आदिक न माने जायेंगे। तो कारणकार्यभाव नहीं बन सकता और वह कथंचित् तादात्म्य इस प्रकारका है कि जिस द्रव्यमें कार्य हुआ है वह द्रव्य पहिले भी था, अब भी है. और जिस समय जो कार्य होता है उस समय वह कार्य अपने उस द्रव्यमें तादात्म्य रूपसे है। शङ्काकार कहता है कि एक संतानमें होने वाले कारणक्षण और कार्यक्षणोंमें ऐसा ही स्वभाव विशेष मान लिया जायगा जिससे यह कारणकार्यपना सिद्ध हो जायगा। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो कारण का कथंचित् तादात्म्य माननेमें क्यों असंतोष किया जा रहा ? वही स्वभाव विशेष तो है जो कि कारणकार्यभावको सिद्ध करता है। जिस स्वभावकी तुम कल्पना करना चाहते हो कि कारण और कार्यमें अर्थात् एक क्षणमें उत्पन्न होने वाले कारणक्षण और कार्यक्षणमें जो स्वभाव विशेष है तो वह स्वभाव विशेष तादात्म्य ही है, उसको छोड़कर अन्य कुछ सिद्ध नहीं कर सकते। कथंचित् तादात्म्यरूप हुआ ही स्वभाव विशेष एक संतानके क्षणोंमें व्यवस्थित होता है। मृतपिण्डसे घट बना तो मृतपिण्ड है उपादान और घट है कार्य। तो इन दोनोंमें कारणकार्य भाव हो, इसके लिए स्वभाव विशेष ढूंढना पडेगा। तो वह स्वभाव विशेष कथंचित् तादात्म्य होता है। यदि कथंचित् तादात्म्य नहीं मानते तो भक्तजनोंके ज्ञानक्षण और सुगतके ज्ञानक्षणों में कार्यकारणभाव तो अव्यभिचारी रूपसे पाया जा रहा है। और संतान है भिन्न-भिन्न याने सुगत सर्वज्ञ भिन्न संतान है और दुनिया भरके सभी लौकिक जनोंके ज्ञान एक भिन्न संतानमें हैं, लेकिन ज्ञानकी उत्पत्ति विषयसे मानी गई है क्षणिकवादमें तो इसके मायने यह हुआ कि सुगत सर्वज्ञका ज्ञान इन सब भक्तजनोंके ज्ञानक्षणोंसे उत्पन्न हुआ है, तो लो कार्यकारणभाव तो अव्यभिचारी है। सो कार्यकारणभाव तो बन गया क्षणिकवादके सिद्धान्तके अनुसार लेकिन संतान भिन्न-भिन्न हैं। तो यों भिन्न संतानमें भी कारणकार्य भाव सिद्ध हो बैठेगा।

भेद और तादात्म्यमें विरोध और अविरोध—यद्यपि भेद और तादात्म्य में विरोध है और वह विरोध किसी भी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता। तथापि कथंचित् मान लिया जाय तो भेद भी सिद्ध हो जायगा और तादात्म्य भी सिद्ध हो जायगा। ऐसा माने बिना कोई अपने सिद्धान्तको भली भांति सिद्ध नहीं कर सकता। देखो एक ज्ञानमें वेद्याकार भी है और वेदकाकार भी है याने ज्ञान है तो ज्ञानका स्वयंका स्वरूप भी है, वह हुआ ज्ञानाकार और उसमें जो पदार्थ ज्ञेय हुए हैं उन ज्ञेयोंका जो ग्रहण है अथवा क्षणिकवादमें तो आकार ही माना है कि ज्ञेयका ज्ञानमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आकार आता है तो देखो एक ज्ञानमें ज्ञेयाकार भी है और ज्ञानाकार भी है। तो इन दोनों आकारोंमें भेद है। जब भी वहां तादात्म्य नहीं माना गया है। कहीं ज्ञानाकार अलग रहता हो ऐसी पृथकता नहीं मानी गई है तो एक ज्ञानमें वेद्याकार, वेदकाकारका भेद होनेपर भी तादात्म्य माना गया है अन्यथा एक ज्ञानपनेका विरोध हो जायगा। यदि वेद्याकार और वेदकाकारमें तादात्म्य न माना जायगा तो एक ज्ञान नहीं ठहर सकता। और, भी देखिये, ज्ञानाकार और ज्ञेयाकारका जो विवेक है वह इसी तरह तो जाना जाता कि ज्ञानाकार तो है प्रत्यक्ष और ज्ञेयाकार है परोक्ष तो ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार ये प्रत्यक्ष और परोक्षका भी भेद पड़ा हुआ है। पर इस भेदके होनेपर ज्ञान तो एक माना गया है। जो ज्ञान हुआ है, जिसमें ज्ञेय पदार्थ प्रतिविम्बित हुआ है वह ज्ञान तो एक माना गया है सो वहां ज्ञानाकार तो है प्रत्यक्ष, और ज्ञेयाकार है परोक्ष यों भेद पड़ा हुआ है। तो तात्पर्य यह है कि निर्णय रखना कि कथंचित् भेद होनेपर भी एक वस्तुमें अपने धर्मके साथ तादात्म्य स्वीकार करना चाहिए। कथंचित् तादात्म्यका अभाव माननेपर वह स्वभावविशेष सिद्ध न होगा, जिसको कि संतानको नियमका कारण बताते हो याने एक संतानमें कारण कार्यभाव होता है ऐसा नियम बनानेके लिए कोई स्वभाव विशेष माना जा रहा है क्षणिकवाद में तो वह स्वभाव विशेष कथंचित तादात्म्य ही है कथंचित् तादात्म्य न माननेपर स्वभाव विशेषकी सिद्धि नहीं कर सकते जो एक संतानमें कारण कार्य भावका नियम बना दे।

क्षणिकैकान्तमें सन्तान और परलोककी असिद्धि—उक्त प्रकारसे चूंकि कार्यक्षण और कारण क्षणोंमें संतति नहीं बनती है। इस कारण अब संतानकी अपेक्षासे परलोक नहीं माना। जो नाना जीव उत्पन्न होते रहते हैं उनका जो संतान है उस संतानका परलोक माना है। लेकिन अब यह एक सतति भी सिद्ध नहीं हो रही तो संतानकी अपेक्षासे परलोक आदिक नहीं माने जा सकते हैं। क्योंकि क्षणिकवादमें संतानको ही सिद्ध करना कठिन हो रहा है। क्योंकि ज्ञान और ज्ञेय इनमें प्रतिक्षण विलक्षणता मानी गई हैं क्षणिकवादमें ज्ञान भी अलग हो गया ज्ञेय भी अलग हो गया। जब ज्ञान और ज्ञेयमें विभिन्नता हो गयी। तो अब संतान किस का चला करे ?

क्षणिकैकान्तमें प्रत्यभिज्ञान स्मरण आदिकी असंभवता होनेसे संतान नियमसिद्धिका अभाव—शंकाकार कहता है कि देखिए जो ऐसा प्रत्यभिज्ञान होता है कि वह ही मैं हूं, वह ही यह है, इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान होनेसे तथा स्मरण होने से एवं इस ही प्रकारसे इच्छा आदिक होनेसे संतान नियमकी सिद्धि हो जायगी। अर्थात् एक संतान है कुछ, यह बात सिद्ध हो जायगी। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि क्षणिकवादमें प्रत्यभिज्ञान, स्मरण इच्छा आदिक भी तो सिद्ध नही हो सकते। क्योंकि सर्वथा विलक्षणता मानी गई है वहां पुरुष और पदार्थमें प्रत्यभिज्ञान कैसे बनेगा ? जैसे कोई पुरुष ऐसा ज्ञान करता है कि यह यही पदार्थ है तो ऐसा प्रत्यभिज्ञान तो कहीं बनेगा ना कि जब पुरुष वहीका वही हो, जो पहिले था सो अब है तभी तो एक पुरुष अथवा एक पदार्थमें प्रत्यभिज्ञान बना सकते हैं। जैसे कि अन्य पुरुषमें प्रत्यभिज्ञान नहीं बनता या अन्य पदार्थोंमें प्रत्यभिज्ञान नहीं बनता, क्योंकि वे बिल्कुल भिन्न हैं तो इसी प्रकार समस्त ज्ञानक्षणोंको जब भिन्न भिन्न मान लिया तो वहां प्रत्यभिज्ञान स्मरण आदिक कुछ भी नहीं बन सकता। अभिलाषा भी कौन किसकी करे ? जब एक क्षणमें ही पुरुष रहते हैं तो अभिलाषा भी किस तरह बन सके ? इस कारणसे जब प्रत्यभिज्ञान आदिक न बने, परलोक आदिक न बनें तो कर्मफलका सम्बन्ध ही सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे नाना पुरुषोंमें यह तो न सिद्ध हो सकेगा कि दूसरेने किया और दूसरेने भोगा। जैसे यहां ही कोई चोरी करता है तो दूसरा तो दण्डित नहीं होता। तो एक जो भी काम करे उसका फल दूसरा नहीं भोगता। तो जब यहां ज्ञानक्षण भिन्न–भिन्न हो गए, संतान जुदे–जुदे हैं तो जो करे वह भोगे यह बात न बन सकेगी ?

क्षणिकैकान्तमें वासनाकी असंभवता होनेके कारण वासनाके कारण भी संतान नियमकी सिद्धिका अभाव—शङ्काकार कहता है कि अनादि वासना ही ऐसी पड़ी हुई है जीवोंमें कि उस वासनाके कारणसे एक संतानका नियम न बन जायगा ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि कथंचित् भी उसमें तादात्म्य सम्बन्ध न माना जाय, सर्वथा भेद माना जाय तो कार्यकारणक्षणमें जब इतना भेद मान लिया गया तो वासना भी सिद्ध नहीं हो सकती। इस कारण यह बात बिंल्कुल निर्णीत हो गई कि क्षणिक पक्ष बुद्धिमानोंके द्वारा आदर करने योग्य नहीं है, क्योंकि उसमें सर्वथा अर्थक्रियाका विरोध है। जैसे कि नित्यत्व एकान्तमें सर्वथा अर्थका अर्थक्रियाका विरोध है उसी प्रकार क्षणिकवादमें भी अर्थक्रियाका विरोध है। इस कारण ज्ञानी पुरुषके द्वारा वह स्वीकार करने योग्य नहीं है। पहिले बताया ही गया था कि जो लोग वस्तुको सर्वथा नित्य मानते हैं तो उसमें जब किसी प्रकारका परिणमन ही नहीं हो सकता, तो कार्य क्या कहलायेगा ? इसी प्रकार जो लोग एक समय ही पदार्थका रहना मानते हैं, दूसरे समयमें पदार्थ विनष्ट हो गया तो अब वह भी क्या अर्थक्रिया करेगा ? तो यह बात पूर्णतया सिद्ध होती है कि क्षणिकपक्ष विवेकियोंके द्वारा स्वीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि उसमें अर्थक्रियाका विरोध है। कैसे अर्थक्रियाका सको दूसरी प्रकारसे भी सुनो !

क्षणिकैकान्तमें कार्यकारणभाव अर्थक्रिया, सन्तानत्व, परलोक बंध,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मोक्ष आदिकी असम्भवता होनेसे क्षणिकपक्षकी अनाश्रयणीयता—अर्थक्रिया कार्यकारणरूप सिद्ध होनेपर बनती है। सो कार्यकारणरूप अर्थक्रियाके बारेमें यह बतायें ये क्षणिकवादी कि कार्यकारणरूप अर्थक्रिया कारणके होनेपर बनती है ? या कारणके न होनेपर बतती है ? यदि कहा जाय कि कारणके होनेपर ही कार्य होता है तब तो तीनों लोकके समस्त कार्य एक क्षणमें ही हो जायेंगे, क्योंकि कारणक्षणके समयमें ही सभी जितने भी उत्तरोत्तर कार्य हैं वे उत्पन्न हो जायें ! क्योंकि अब तो यह नियम बना दिया कि कारणके होनेपर कार्य होता है। तो जब कारण है तो सारे कार्य जो तीन कालमें हो सकते हैं, सभी एक समयमें हो जाने चाहियें ! क्योंकि जब कारण मौजूद है तो सारे कार्य हो क्यों नहीं बैठते हैं ? और, फिर यों जब सारे कार्य उत्तरोत्तर हो गए या सभी संतानोंमें हो गए तो संतानका नियम न बना, इसी प्रकार दूसरे पक्षमें भी अर्थक्रिया सम्भव नहीं होती दूसरा पक्ष है कारणके न होनेपर कार्य होता है। तब तो फिर कारण एक समयका रहता है, बाकी अनादि अनन्त काल तो कारण है नहीं। तब सभी कार्य हो जाने चाहिएं। इस कारणसे यह बात निर्णीत हुई, यह साधन सही सिद्ध हुआ कि क्षणिक पक्षमें सर्वथा अर्थक्रियाका विरोध है। इस कारणसे क्षणिक पक्ष बुद्धिमानोंके द्वारा आदर किए जाने योग्य नहीं है। क्योंकि वहाँ न तो प्रत्यभिज्ञानकी सिद्धि है न परलोककी सिद्धि है। न कर्मबंध, मोक्ष आदिककी सिद्धि है। कारणके न होनेपर कार्य होता है तो उसमें इस दोषके अतिरिक्त यह भी दोष है कि फिर तो कारण क्षणके पहिले और कारण क्षणके बाद अनन्त काल तक कार्य सहित ही समय रहना चाहिए। क्योंकि कारणके अभावकी अभावकी समानता है। जिस समय उपादान है, उसके पहिले भी वह नहीं है। उसके बाद भी वह नहीं है। और, माना यह जा रहा है कि कारणके अभावमें कार्य होता है फिर तो कार्य सदा पाया जाना चाहिए, किन्तु ऐसा होता है नहीं, अतः यह बात नहीं कही जा सकती कि कारणके न होनेपर कार्य होता अथवा कारणके होनेपर कार्य होता अथवा कारणके होनेपर कार्य होता, तो इससे यह सिद्ध हुआ कि क्षणिकवादमें कारण कार्य नही बनता, अर्थक्रिया नहीं बनती, इस कारण यह क्षणिक पक्ष आदर करनेके योग्य नहीं है।

कारणसे अथवा किसी भी प्रकार सर्वथा असत्‌की अनुपपत्ति—यहाँ क्षणिकवादी शंकाकार कहता है कि यद्यपि उपादान क्षणसे पहिले अर्थात् कारण क्षणसे पहिले भी कारण नही है और बादमें भी कारण नहीं है। सो कारणके अभावकी पूर्व और पश्चात समता होनेपर भी कार्यका स्वयं नियत काल है। और वह कार्य अपने नियत कालमें होता है अतएव वहाँ कोई आपत्ति नहीं है। इस शंका के उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो नित्य पदार्थके सम्बन्धमें यह बात समझिये कि नित्य पदार्थ यद्यपि सर्वदा रहता है सर्वदा रहनेकी समानता होनेपर भी कार्य स्वयं अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नियत कालमें हो जायगा। यों सर्वदा नित्य मतव्यमें भी कार्यकी सिद्धि हो जाती है यह बात पहिले भी विस्तार पूर्वक कह दी गई है और दूसरा दूषण समझिये क्षणिक वादमें कि इस पक्षमें तो सत् कार्य उत्पन्न होता ही नहीं है, क्योंकि माना ही नहीं है खुद कि सत्का उत्पाद होता है। सो अब इस वचनमें क्षणिकवादके सिद्धान्तसे ही विरोध आता है और फिर दूसरी बात यह है कि सत् ही कार्य बने एकान्ततः तो कार्यका कभी विराम नहीं हो सकता, अतः कार्य कथंचित असत्रूप उत्पन्न होता है। शंकाकार यहाँ कहता है कि तब तो यह ही मानलो कि असत् ही कार्य होता है, इसमें क्या दोष है ? जब सर्वथा सत्में कार्य होनेमें यह दोष आता है कि सदा ही फिर कार्य होता ही रहना चाहिए या वही बना ही रहे, उसका कभी विराम न हो तो इन दोषों से बचनेके लिए यह सीधा उपाय है कि कार्यको असत् मानेंगे, अर्थात् जो न था, जो असत् है वही हुआ है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं—

यद्यसत् सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत्।
मोपादाननियामो भून्माश्वासः कार्यजन्मनि ॥४२॥

सर्वथा असत्में कार्यत्वका अभाव—यदि सर्व प्रकारसे असत् ही कार्य बनता है ऐसा माना जाय तो वह कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकता। जैसे कि आकाश का फूल, वह सर्वथा असत् है तो उत्पन्न तो नहीं हुआ करता। पर्याय आकारसे असत् है, कार्य यह बात तो मानी जा सकती है याने जो कार्य व्यक्त हुआ है उस रूप नहीं था पहिले, अब हुआ है उसीको कार्य कहा गया है तो पर्यायके रूपसे तो असत् है वह कार्य, किन्तु पर्यायरूपकी तरह द्रव्य अपेक्षा भी सर्वथा असत ही कार्य बनता हो तो वह कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे आकाशपुष्प यह द्रव्यरूपसे असत् है। तो वह उत्पन्न होता हुआ नहीं देखा गया है। जैसे कि आकाशपुष्प और क्षणिकवादियोंका कार्य भी असत् माना गया है तो वह भी उत्पन्न नहीं हो सकता। यह अनुमान प्रयोग यह सिद्ध करता है कि सर्वथा असत् कार्य नहीं बनता, किन्तु कथंचित् सत् और कथंचित असतका ही कार्यपना बन सकता है। यह जो अनुमान प्रयोग किया गया कि जो सर्वथा असत है वह उत्पन्न नहीं हो सकता, और इसमें हेतु दिया गया है कि सर्वथा असत होनेसे तो यह हेतु व्यापक विरुद्धोपलब्धि नामका हेतु है, याने साध्य बनाया जा रहा है कार्य और वह कार्य है सत्त्वसे व्याप्त, और कार्यको माना है असत याने हेतुके विरुद्ध, अतएव यह हेतु व्यापक विरुद्धोपलब्धि नामका साधन है। लोगों में यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है कि कथंचित सतमें कार्यपना होता है। क्योंकि जो कथंचित सत हो ऐसे उपादानमें ही उत्तरोत्तर परिणतियाँ हुआ करती हैं। जैसे मृतपिण्डसे घट बना, घटसे खपरियाँ बनी तो कोई सत है ना, सदा मिट्टी, जिस आधारमें ये उत्तरोत्तर परिणमन हो रहे हैं। अत, मानना चाहिए कि कथंचित् सत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थमें ही कार्यपना बनता है और वह कथंचित् सत है द्रव्यरूपसे।

एक वस्तुमे सत्त्व और असत्त्वका अविरोध—यहाँ शङ्काकार कहता है है कि जो सत है वह तो सत् ही है, असत् कैसे बन जायगा ? क्योंकि सत् और असत् का परस्पर विरोध है, तब किसी सत्मेंसे असत्की उत्पत्ति कैसे हो जायगी ? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का सङ्गत नहीं कही जा सकती, क्योंकि अनेकों बार भी पदार्थमें विरुद्ध धर्म पाये जाते हैं, विरोधी धर्मोंका निराकरण नहीं हो सका। जैसे क्षणिकवादियोंके यहाँ ही चित्रज्ञानाद्वैत माना है। जिसका कि भाव यह है कि वह ज्ञान तो एक है, किंतु उसमें ज्ञेय पदार्थ चित्रविचित्र हैं अतएव वे द्वैत हैं। तब देखिये कि ज्ञानमें एकत्व भी है और अनेकत्व भी है। तो जैसे इन दो विरोधी धर्मों का उस चित्रज्ञानमें निवास है उसी प्रकार सभी पदार्थोंमें एक बार नहीं, अनेकों बार सदा विरोधी धर्मोंका आवास रहता है उसका निराकरण नहीं किया जा सकता और तब अर्थात् जब अनेकों बार विरुद्ध धर्मोंका रहना सिद्ध होता है उसका निराकरण नहीं किया जा सकता है, तब अन्वय और व्यतिरेककी प्रतीति हो रही है जो कि भाव स्वभाव कारणक है याने अन्वय भी भावस्वभावरूप है और व्यतिरेक भी भाव-स्वभावरूप है याने सद्भाव और अभाव सत्व और असत्व इन दोनोंकी प्रतीति होरही है। जो सत्व है वह तो किसी भावरूप है ही, किंतु जो असत्व है वह भी किसी भाव-रूप ही है, अतएव उस सत्व असत्वका अपलाप करनेसे कोई लाभ नहीं है, कुछ फल नहीं है। यदि उन दोनोंमेंसे किसी एकका भी निराकरण किया जाय तो दोनोंका निराकरण हो जाता है। यदि अन्वय न माना जाय तो व्यतिरेक भी नहीं बनता। व्यतिरेक न माना जाय तो अन्वय भी नहीं बनता। क्योंकि अन्वय और व्यतिरेक इन दोनोंमें अभेद पाया जाता है। भेद और अभाव इन दोनोंमें अभेद है ?

अन्वय और व्यतिरेकमें अभेदका प्रतिपादन शंकाकार पूछता है कि अन्वय और व्यतिरेकमें अभेद किस प्रकार हो सकता है। अन्वयका अर्थ है सदभाव और व्यतिरेकका अर्थ है अभाव। जो बिल्कुल विपरीत पदार्थ हैं उनमें अभेद कैसे सम्भव हो सकता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि अन्वय और व्यतिरेकमें अभेद यों बनता है कि अन्वय तो व्यतिरेकरूप पड़ता है और व्यतिरेक अन्वयरूप पड़ता है। क्योंकि जिसका सद्भाव होनेपर जो कार्य होता है उस कारणके अभाव होनेपर उस ही कार्यकी अभावरूपसे प्रतीति होती है याने कारणका सद्भाव होनेपर जो कार्य होता है उस कारणके अभाव होनेपर उस कार्यका भी अभाव देखा जाता है। तो चाहे भावकी प्रधानतासे वर्णन करें अथवा अभावकी प्रधानतासे वर्णन करें, वर्णन तो उसी कारण कार्यका हुआ ना ! कारणके अभावमें कार्यका अभाव है, कारणके सद्-भावमें कार्यका सद्भाव है, यह बात न मालूम होती हो ऐसा नहीं है। यह भली तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतीत है और इसीलिए अन्यव व्यतिरेकमें अभेद सिद्ध होता है। शङ्काकार कहता है कि भला अन्वय तो है भावस्वभाव रूप और व्यतिरेक है अभावस्वभाव रूप तो जब दोनोंका अर्थ जुदा-जुदा है तब अन्वय व्यतिरेककी प्रतीति भावस्वभावके कारण ही क्यों कही जा रही कि दोनों भावस्वभाव रूप हैं और उसी कारणसे अन्वय व्यतिरेक का ज्ञान होता है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि ऐसी आशंका न करें क्योंकि वस्तुके अस्तित्व स्वभावसे जो अन्य है नास्तित्व वही स्वभाव तो स्वभावान्तर कहलाता है उस ही स्वभावान्तरको अभाव शब्दसे व्यवहारमें लाया गया है। तो जिसको अभाव शब्दसे कहा है वह किसीके सद्भावरूपको लक्ष्यमें लेकर ही जाना जा सकता है। जैसे कहा जाय कि यह स्थान अग्निरहित है, तो अग्निरहित है—अग्निका अभाव है, यह प्रतीतिमें कैसे समझा गया ? पावकसे याने अग्निसे रहित कोई स्थान विशेषको लक्ष्यमें लिया तो वह स्थान भावस्वरूप है जिसको इस विशेषणसे देखा कि अग्निसे रहित है यह प्रदेश, तब अग्निके अभावका ज्ञान किया गया। किसी भी अभावका ज्ञान किया जा रहा हो जानने वालेके हृदयमें किसीका सद्भाव पैदा हुआ हो तब वह अभावकी बात बोल सकता है। जैसे कहा कि धूमका अभाव है, तो धूमका अभाव प्रतीतिमें कैसे आया ? धूमरहित स्थान ही तो धूमके अभावरूपमें जाना गया है। तो अग्निका अभाव होनेमें अग्निरहित प्रदेश ही तो समझा गया सो धूमका अभाव जानने में प्रदेश धूमरहित ही तो समझा गया। तो उससे यह सिद्ध हुआ कि व्यतिरेक भी भावस्वभावके कारण है। जिस प्रदेशमें अग्नि नहीं है वहाँ धूम भी नहीं है परन्तु अग्नि और धूमके अभावमें भी कोई प्रदेश सद्भाव तो है, उस स्थानको लक्ष्यमें ले करके अभावकी बात कही गई है। यों व्यतिरेक भी भावस्वभावरूप होता है। अतएव यह आशङ्का न रखना चाहिए कि अभाव या व्यतिरेक भावस्वरूप कैसे होगा ? कोई भी अभाव तुच्छाभावरूप नहीं होता याने उसका कोई रूप न हो, कोई सद्भाव न हो, कोई सदात्मक वस्तु बोधमें न आये, ऐसा कोई अभाव नहीं हुआ करता।

असत्के कार्यपना माननेपर कार्यकारण व्यवस्थाके हेतुभूत अन्वयव्यतिरेक प्रतीतिकी अनुपपत्ति—जो सर्वथा असत् है उसके कार्यपना बतानेमें अन्वय व्यतिरेककी प्रतीति कार्यकारण भावकी व्यवस्थाका कारण नहीं बन सकती याने जो सिद्धान्त सर्वथा असत् कार्यका किसीको कारण मानना है वहाँ कार्यकारणभावकी व्यवस्था कैसे बनेगी ? कौन है उसका कारण ? यदि सर्वथा असत् कार्यका कोई कारण मान लिया जाय तो यों दुनियाके सारे पदार्थ पडे हुए हैं, वे सभी पदार्थ किसी भी विवक्षित कार्यके कारण क्यों नहीं बन जाते ? कारणके अभावमें जब कार्य होना माना है और कारणके सद्भावमें कार्य न होना माना है तो वहाँ कार्यकारणभाव की व्यवस्था नहीं बन सकती। क्षणिकसिद्धान्तमें यह माना है कि जैसे मृत्पिण्डसे घड़ा बना तो मृतपिण्ड है कारण और घड़ा है कार्य, मगर जब तक मृत्पिण्ड है तब

Version 1

तक घड़ा नहीं बनता और जब मृत्पिण्ड नहीं है तब वहाँ घड़ा बनता है, तो जब कारणके अभावमें कार्य हुआ और कारणके सद्भावमें कार्य बना, ऐसी स्थिति मानी जाय तो वहाँ कार्यकारणभावकी व्यवस्था नहीं बन सकती और न वहाँ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध बताया जा सकता है। इस कारण यह निश्चित् करना चाहिए कि सर्वथा असत् कार्य नहीं होता। यदि सर्वथा असत् कार्य बन जाने लगे याने पर्यायरूपसे जैसे असत् है यों ही द्रव्यरूपसे भी असत् हो और फिर उसे कार्य कहा जाय तो जब उसे सर्वथा असत् बताया तो पर्यायरूपसे भी उत्पाद न होनेका प्रसङ्ग आयगा। जैसे आकाशपुष्प असत् है तो पर्यायरूपसे भी उसका उत्पाद नहीं हो पाता। तब समझना चाहिए कि कार्यत्व और कथंचित् सत्त्वका व्याप्यव्यापक भाव है याने कथचित् सत्त्व हो वही कार्य बन सकता है, सर्वथा असत्में कार्यपना बनता नहीं है।

असत् कार्यमें कारणवत्त्वकी तथा उत्पादव्यय स्थितिकी अनुपपत्ति—सर्वथा असत्का जब कार्यपना नहीं बनता है तब उस प्रकारका कार्य याने असत् कार्य कारण वाला कभी नहीं हो सकता है, कार्य ही सिद्ध नहीं होता, कारण किसे कहा जाय, क्योंकि सर्वथा असत् होनेसे। जो सर्वथा असत् है ऐसा असत् कार्य कभी भी कारणवान नहीं हो सकता—जैसे बंध्यापुत्र। बंध्यापुत्र सर्वथा असत् है तो उसका कारण क्या होगा ? तथा इस प्रकार भी यह सिद्ध होता है कि सर्वथा असत्का कुछ भी कारण नहीं हो सकता, क्योंकि वह कथंचित् न ठहरा हुआ है और न उत्पन्न हुआ है। यों सर्वथा असत् कार्य न हुआ, न होगा। होता ही नहीं है और वह कथंचित् भी ध्रुव न होगा और न अनुत्पन्न होगा। उक्त प्रकारसे जब कार्यकारण व्यवस्था नहीं बनती, उत्पाद विनाश नहीं बनता तब मानना चाहिए कि जो कथंचित् सत् है याने द्रव्यरूपसे सत् रहता है ऐसा ही पदार्थ स्थित हो सकता है और उत्पन्न हो सकता है। जैसे कि विनाश भी सतका ही हुआ करता है। जो असत हो उसका विनाश क्या ? है ही नहीं तो उसका व्यय न कहलायगा ? इसी प्रकार जो कुछ भी नहीं है उसका उत्पाद क्या कहलायेगा ? और, जो कुछ भी नहीं है, वह स्थित भी क्या रह सकेगा ? तो यों स्थिति, उत्पाद और व्यय ये तीनों सतके ही सम्भव हो सकते हैं। और. सतका यह लक्षण भी किया गया है कि जो उत्पादव्यय ध्रौव्यसे युक्त उसे सत कहते हैं। कोई भी वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यसे रहित न [illegible] सी कारण वह कार्यवान है, असत् कार्यकारण युक्त नहीं हो सकता है। जो सत् है उस हीमें कार्यकारणकी व्यवस्था होती है। जो पदार्थ है उसका समूल नाश कभी नहीं हो सकता। यदि पदार्थका समूल नाश हो जाय तो निरन्वय विनाशका कारण भी क्या बन सकेगा ? और फिर उत्पाद भी किसी असतका कैसे बन सकेगा ? तो निरन्वय विनाश भी नहीं होता और निरन्वय उत्पाद भी नहीं होता।

http://www.jainkosh.org

द्रव्यापेक्षया सत् व पर्यायापेक्षया असत्के कार्यपना माननेपर कार्य-कारणव्यवस्थाकी एव उत्पादव्ययस्थितिकी सिद्धि—कोई वस्तु है तब उस सद्‌भूत वस्तुमें नवीन पर्यायरूपका विकास होता है वह तो है उसका उत्पाद और जो पर्याय व्यक्तरूप है वह पर्याय विलीन हो जाती है क्योंकि उसमें नवीन परिणति हुई है। एक पदार्थमें पूर्व और उत्तर ये दो परिणमन एक साथ नहीं ठहर सकते हैं। जब नवीन परिणमन होता है तो पूर्वपरिणमन विलीन हो जाता है यही कहलाता है विनाश और नवीन परिणमन होता है यही कहलाता है उत्पाद। तो सदभूत पदार्थ को माने बिना उत्पादव्ययकी कल्पना भी नहीं की जा सकती, इसीको अनेक दार्शनिकोंने गुणपर्यायरूपसे वर्णन किया है। लेकिन एकान्त पक्षमें गुणोंका अलग और पर्यायोंका अलग सत्तारूपसे वर्णन किया है। किंतु तथ्य यह है कि वस्तु एक है, सत् स्वरूप है, शक्तिमान है और उसकी शक्तियोंके जो विकास हैं वे परिणमन कहलाते हैं, तो यों गुण और पर्याय सदभूत वस्तुमें एक साथ बने हुए हैं और दोनोंका उस सदभूत वस्तुसे तादात्म्य है। पर्याय तो जिस समयमें प्रकट हुई है उस समय तादात्म्यरूप से है और शक्तियाँ पदार्थमें शाश्वत तादात्म्यरूपसे हैं फिर भी इनका स्वरूप समझनेके लिए भेददृष्टि करके भेद समझा जाता है कि जो अभेद पिण्ड है वह तो है द्रव्य और जो शक्तियाँ हैं वे कहलाती हैं गुण उनका जो व्यक्तरूप है परिणमन है वह कहलाता है पर्याय। पर्यायको कार्य कहते हैं। भेद इस तरह किया जाता है और कालभेदसे भी किया जाता है जो शाश्वत है वह तो है द्रव्य और जो कुछ समयको हुई है वह है पर्याय।

सद्भूत पदार्थमें उत्पादव्ययकी सिद्धि—क्षणिकवादी शंकाकार यहां कहता है कि स्याद्वादी लोगो ! यदि असत्का उत्पाद व्यय घटित नहीं होता है तो सत् कार्यमें उत्पादव्यय ध्रौव्य कैसे घटित हो जायगा ? सत्में उत्पाद माननेपर उत्पाद आदिक कैसे सिद्ध हो सकते हैं। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सद्भूत पदार्थमें उत्पत्ति मान लेनेपर तो वहाँ यह ही बात सिद्ध होती है कि पदार्थ तो सत् है। अब उसमें पूर्व-पूर्व अवस्था बनती जाती हैं। जैसे मृतपिण्ड, स्थास, कोश, कुसूल, घट आदि ऐसी क्रमशः अवस्थायें बनती हैं। मृत्पिण्डमें जब घट बनता है तो इसमें सभी लोग यह देख रहे हैं कि जो मृतपिण्ड था वह स्थासरूप बन गया। जो अब स्थास है वही कुसूल रूप बन गया, फिर वही घड़ा बन गया। तो सभी लोग इसी बातको समझ रहे हैं कि पूर्व पूर्व उत्तर-उत्तर रूप बनता जाता है, यही सतमें हुआ करता है। इस तरह वहाँ उत्पादव्ययध्रौव्य घटित हो जाता है। जो सत् है एक वह तो ध्रुव है, जो पूर्व अवस्था है उसका व्यय है और उत्तर अवस्थाका उत्पाद है।

एक सद्भूत पदार्थ न मानकर अभेदवासनावश अभेदकल्पनाके विकल्पमें उपादाननियमकी असिद्धि—यदि क्षणिकवादी जन ऐसा आग्रह रखते रहें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और अपनी बुद्धिसे ऐसी ही कल्पना करते रहें कि वहाँ जो सदृश नई-नई चीजोंकी उत्पत्ति हो रही है उसमें विप्रलम्भसे अनादि वासनाके कारण अभेदका वहाँ ज्ञान हो रहा है उस विप्रलम्भके कारण याने अभेद कल्पनाके कारण वहाँ प्रतीत होता है कि इस उपादानसे यह कार्य हुआ है, ऐसी यदि वे कल्पना करें तो अपनी बुद्धिसे कुछ कल्पना करते रहें, पर उपादानका नियम नहीं बन सकता। जब कारणक्षण व कार्यक्षणमें भेद मान लिया तो जैसे अन्य कारणोंमें अन्वय न होनेके कारण उपादानका नियम नहीं बनता, इसी प्रकार एक संतानमें भी होने वाले नानाक्षणोंमें भेद होनेके कारण वहाँ भी उपादानका नियम नहीं बन सकता। जैसे मृत्पिंड, स्थास आदिकका तंतु, कपड़ा आदिकसे सर्वथा भेद है तो कपड़ामें और कपडेमें अन्वयका अभाव है ना, तो जब अन्वयका अभाव है यहाँ तो यह तो नहीं कहा जा सकता कि कपडेका उपादान घट है या घटका उपादान कपड़ा है, क्योंकि इसमें भेद है। तो इसी प्रकार मृत् पिंडमें स्थास आदिक क्षणोंमें भी भेद माना है क्षणिकवादियोंने, जैसे कि एक देहमें अनेक ज्ञानक्षण उत्पन्न होते हैं तो उन ज्ञानक्षणोंमें भी भेद परस्पर माना है, ऐसे ही पिण्ड घट आदिकमें अत्यन्त भेद माना है, ऐसी स्थितिमें यह कैसे कहा जा सकेगा कि स्थासका उपादान मृत्पिंड ही है, कोशका उपादान स्थास ही है, कुसूलका उपादान कोश ही है, घटका उपादान कुसूल ही है और तंतु आदिक स्थास आदिकके उपादान नहीं हैं। यह नियम बनाने वाला कोई कारण नहीं सिद्ध होता है और इससे यही सिद्ध होता है कि मृत्पिंड स्थास आदिक भागोंमें पहिला-पहिला ही उत्तर उत्तर बनता चला जा रहा है। यहीं सभी लोग देख रहे हैं। यहाँ जो मृत्पिंड स्थास आदि अनेक भाव बताये हैं उनका तात्पर्य यह है कि कोई कुम्हार जब मिट्टीके पिंडसे घड़ा बनाता है तो उसने मृत्पिंडको सान करके तैयार किया, चाकपर रखा, अब मृत्पिंडसे जब वह घड़ा बनानेका उद्यम करता है तो वह मृत्पिंडका पहिले स्थास जैसा रूप बनता है। एक मोटी थाली जैसा रूप बनाया जाता है फिर उसका ही प्रयत्न करके कोश जैसा रूप बनता है, जैसे कि एक पिंडी जैसा बन जाय, फिर उसीसे कुसूल जैसी परिणति बनती है। भीतर कुछ पोली है और ऊपर पतला-पतला फैलाया जा रहा है। फिर उस कुसूल पर्यायके बाद घट पर्याय बनती है। तो वहाँपर यह बात देखी जा रही है कि पहिली अवस्था ही उत्तर अवस्था बन गई। वहाँ पहिली अवस्था का व्यय है और अगली अवस्थाका उत्पाद है। वहाँ तो उपादानका नियम बन जायगा। कब ? जब कि द्रव्यकी अपेक्षासे उसे एक सत् मानेंगे, किंतु जो उनको परस्पर भिन्न ही मानते हैं तो जैसे घट और कपड़ामें उपादानकी बात नहीं बनती इसी तरह इस मृतपिंड स्थास आदिकमें भी उपादेयकी बात नहीं बन सकती है, क्योंकि वहाँ यह नियम बनाने वाला कोई कारण नहीं है कि स्थासका उपादान मृतपिंड ही हो, पर कपड़ा न हो, तंतु न हो, ऐसा कोई साधन नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सद्भूत पदार्थ न मानने वालोंके यहाँ वैलक्षण्यके अनवधारणसे उपादानकारणताके नियमकी असिद्धि—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि स्थास कोश आदिकका उपादान मृत्पिंड आदिक ही है कपडा तंतु आदिक नहीं है, इसको बनाने वाला कोई कारण है और वह कारण है विसदृशताका अनवधारण अर्थात् सर्वथा अभेदविधि बनी है अनादिवासनाकी वजहसे, जो उन पर्यायोंमें अभेद प्रतिभास हो रहा है उससे यह नियम बन जाता है कि कोशका उपादान स्थास है, स्थासका उपादान मृत्पिंड है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यदि इस तहर सदृश नवीन-नवीन उत्पत्तिके विप्रलम्भसे अर्थात् अभेद प्रतिभाससे केवल वासनाके कारण जो उन में अभेदका बोध हुआ है उससे यदि पुरुषोंके अभेदका अवधारण मानते हो याने वहाँ जो मिट्टीकी तरह ही सदृश सदृश जो अनेक बातें उत्पन्न हुई हैं उनका विप्रलम्भ कर लेनेसे यदि अभेदका अवधारण मानते हो तब तो देखिये ! समान समयमें ही होने वाले नित्य आदिकके जैसे खेतोंमें तिल पैदा हो जाते हैं सो एक घंटीमें अनेक तिल होते हैं और एक दूसरेसे चिपके हुए होते हैं। तो एक ही समयमें वे सब तिल पैदा हुए और वे निरन्तरतासे उत्पन्न हुए, फिर उनमें भी अभेदका अवधारण कर लेना चाहिए। उन सब तिलोंको भी एक मान लेना चाहिए। क्योंकि अब सदृश अनेक की उत्पत्तिके विप्रलम्भसे भेद माना जाने लगा मृत्पिण्ड स्थास आदिकमें, तो इसी प्रकार वे सब तिल जो एक घंटीमें बने हैं वे सदृश हैं और निरन्तरतासे उत्पन्न हुए हैं। फिर उनमें भी अभेदका निश्चय कर देना चाहिए।

भिन्नमें अभेदावधारण करके उपादाननियम बनानेपर भिन्न संतानमें भी उपादान कारणताका प्रसंग—जब ऐसे भिन्नमें अभेदका अवधारण बन जायगा तो जो परस्पर भिन्न संतान हैं उनमें भी उपादानपनाका प्रसंग आ जायगा। क्योंकि उपादानपना होनेके लिए सदृशता होना चाहिए और निरन्तरता होना चाहिए, इतना ही तो आप चाहते हैं। तो जो भिन्न संतान हैं उनमें भी उपादानपना बन जायगा। भिन्न संतान जैसे बौद्ध और बुद्ध याने सुगत और सुगतके भक्तजन ये हैं भिन्न संतान, जुदे-जुदे पदार्थ, लेकिन माना है यह कि सुगतका जो ज्ञान है उस ज्ञानमें कारण बना है सौगतोंका ज्ञान, भक्तोंका ज्ञान, ये भिन्न संतान हैं, किन्तु निरन्तर ज्ञान चल रहा है तो इसमें भी भक्तोंका ज्ञान उपादान हो जाय और सुगतका ज्ञान कार्य बन जायगा। घट पट आदिक पदार्थोंमें भी परस्पर उपादानपना आ जायगा जो कि भिन्न संतान है। अगर निरन्तर उत्पाद है तो यों उनमें अभेदका अवधारण हो जाना चाहिए, जैसे कि एक संतानमें रहने वाले सदृश नये नये कार्योंमें उत्पन्न होनेका नाम सादृश्य माना है और उसे माना है बाह्य कारण। जहाँ अभेदका अवधारण हो वहां कारण सौगतोंने दो माने हैं—एक तो यह कि सदृश नये-नये कार्योंकी उत्पत्ति हुई है यों सदृशता कारण है। दूसरे यह मानते हैं कि अभावका व्यवधान नहीं है। जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मृतपिण्डसे स्थास बना, स्थाससे कोश कुसूल आदिक बने तो एकदम एक क्षणके बाद दूसरा बन ही तो गया। बीचमें समयका व्यवधान न रहा कि कुछ समय कुछ भी न हुआ हो और बादमें कुछ हुआ हो तो जैसे वहाँ क्षणोंमें व्यवधान करने वाला कोई अन्य क्षण नहीं है तो यहाँ अभावका अव्यवधान बाह्य कारण है और विप्रलम्भ अन्तरङ्ग कारण है। याने अनादि कालसे जो अविद्या वासना बनी हुई है उस वासना के कारण जो अभेदज्ञान बना उसे अन्तरंग कारण माना है अभेदके अवधारणमें। तो जैसे एक संतानमें अभेद विधि हुई, अन्तरंग बहिरंग कारण माने हैं ऐसे ही भिन्न संतानोंमें भी ये अन्तरंग और बहिरंग दोनों कारण बनते हैं। इस कारणसे भिन्न संतान वाले पदार्थोंमें भी परस्पर उपादान कारणपना बन बैठेगा। देखिये भिन्न भिन्न संतान वाले तिल आदिकमें ये अन्तरंग बहिरंग कारण कैसे बनते हैं? यहाँपर भी सदृश नवीन नवीन कार्योंकी उत्पत्ति है यह तो हुआ सदृशत्व तथा एक घंटीमें जो अनेक तिल बने हुए हैं वे एक तिलके बने हुए हैं वे एक तिलके बाद दूसरे तिल चिपके ही हैं, उनके बीचमें अभाव नहीं है कि कुछ न हो, तो यों अभावका अध्यवसान भी है। सो अनादिकालकी अभेदवासनासे वहाँ अभेद जैसी विधि हो जायगी तो यों भिन्न संतान वाले तिल आदिकमें अभेदविधिके अन्तरंग और बहिरंग कारण पड़े हुए हैं, अतः वहाँपर भी अभेद विधि हो जायगी और उपादेयपना हो जायगा।

भिन्नदेशीतिलादिकोंमें अभावाव्यवधान न मानकर उपादानोपादेय भावका निराकरण करनेपर इसी युक्तिसे मृतपिण्डस्थासादिमें भी उपादानोपादेयभावके अभावका प्रसंग—शंकाकार कहता है कि देखिये वे जो अनेक तिल हैं वे भिन्न देशोंमें रखे हुए हैं। जिस जगहमें एक तिल है उस जगहमें दूसरा तिल नहीं है। तो भिन्न भिन्न देशोंमें रहने वाले उन तिल आदिकमें सादृश्यकी उत्पत्ति भले ही है लेकिन भिन्न देश होनेके कारण अभावका अव्यवधान नहीं है, मायने एक तिल और दूसरे तिलके बीचमें अभाव पड़ा हुआ है। तो यों अन्तरालमें परस्पर अभाव पड़ा रहनेके कारण यहाँ अन्तरंग बहिरंग कारण घटित नहीं होते। जिससे उन भिन्न संतान वाले तिल आदिकमें अभेदकी विधि बनायी जा सके। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं—तब तो देखिए—मृत्पिण्ड स्थास कोश आदिक जो एक संतानमें माने गए हैं उनमें भी भिन्नदेशपना सम्भव हो जायगा। और इस कारण वहाँपर भी अभावका व्यवधान बन बैठेगा। जो एक मृतपिण्डमें स्थास, कोश आदिक अनेक भाव अथवा परिणमन बने हैं उनमें केवल कालका ही भेद हो सो बात नहीं याने पहिले कुसूल पर्याय है फिर घट पर्याय है इतने कालका ही भेद हो सो बात नहीं है, किन्तु वहाँ देशका भी भेद है। भले ही मोटे रूपमें यह बात समझमें नहीं आती कि देश भेद कहाँ है? जिस ही जगहमें कुसूल है उस ही देशमें घट बन गया। लेकिन नहीं, देशभेद वहाँ क्षणिकवादमें माना ही गया है, क्योंकि यदि देश भेद न हो तो वहां

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्यपनेका प्रसंग आ जायगा। और, यों भी समझ लीजिए कि देश भी क्षणिक है। जब देश क्षणिक है तो एक संतानमें देशका भी भेद बन बैठेगा। निरंशवादियोंके यहां द्रव्यके अंश, क्षेत्रके अंश, कालके अंश और भावके अंश, सभीके अंश अंश करके भेद बना डाला गया है। तो यहाँ देशभेद भी है अतएव अभावका व्यवधान बन गया। तो मृतपिण्ड कोश आदिकमें भी परस्पर उपादानरूपता न बनेगी। वहां भी भिन्नदेशता सिद्ध हो जायगी। अतः यह नहीं कह सकते कि भिन्न संतान वाले तिल आदिकमें भिन्न देश तो होनेके कारण उपादानपना न बनेगा। यदि शंकाकार यह कहे कि समस्त स्वलक्षणमें स्वरूपमात्र ही देश कहलाता है जो उन भावोंका निज स्वरूप है वही देश कहलाता है। इसलिए अन्य कोई देश है ही नहीं, अतः कोई दोष न आयगा। तो इसके उत्तरमें भी यह समझिये कि फिर भिन्न संतति वाले तिल आदिकमें भिन्नदेशता कैसे सिद्ध करोगे? वहाँपर भी जितने तिल हैं वे अपने अपने स्वलक्षण हैं और उनका जो स्वरूपमात्र है वही उनका देश है। तो जब वहाँपर भी कोई देश न रहा तो भिन्नताकी भी बात क्या बता सकेंगे? भिन्न संतति वाले तिल आदिकमें भी भिन्नदेशताकी बात सिद्ध नहीं की जा सकती है। तब जैसे एक संतान वाले पदार्थोंमें भी परस्पर उपादान उपादेय भाव बन जायगा। या स्थास कोस आदिकमें भी उपादानका नियम न बन सकेगा। अतः यह मानना चाहिए कि जो द्रव्य अपेक्षासे सत् है वहां ही उत्पादव्ययपनेकी व्यवस्था है और उपादान उपादेय भावकी व्यवस्था है?

स्वरूप, लक्षण और देशके भेदसे तिलादिमें भिन्नदेशता माननेपर इन्हीं कारणोंसे मृत्पिण्डादिमें भी भिन्नदेशताका प्रसङ्ग—शङ्काकार कहता है कि उन तिलोंमें स्वरूप, लक्षण व देशका भेद होनेसे भिन्नदेशताकी सिद्धि होती है अर्थात् वे सभी तिल अपने-अपने भिन्न देशमें रह रहे हैं और इस कारणसे उनका संतान भिन्नदेशी हो जाता है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो स्वरूप, लक्षण और देशभेदसे मृत्पिंड आदिकमें भी भिन्नदेशता सिद्ध हो जायगी। मृत्पिंड और घट इनमें स्वरूपभेद तो है ही क्योंकि स्वलक्षण न्यारा-न्यारा है। चिन्ह भी न्यारे-न्यारे पाये जाते हैं ओर देशभेद भी है। क्षणिकवादमें जैसे एक-एक कालवर्ती पदार्थ होनेसे वहाँ कालभेद माना जाता है इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थमें देशकाल भी पाया जाता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ निरंश माना गया है। तो यों मृत्पिड आदिकमें भी इन्हीं भेदोंसे भिन्नदेशता सिद्ध हो जायगी और तब एक संतान माननेका कारण न रहेगा। और, यदि मृत्पिड आदिकमें भिन्नदेशता नहीं मानते स्वरूपका भेद होनेपर भी तब उनतिलोंमें भी मत मानो!

क्षणिकवादमें सामान्यकी तरह सादृश्यकी भी असिद्धि होनेके कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपादानोपादेयभावकी सिद्धिके लिये तिलादिकोंसे मृत्पिण्डादिकी विशेषता माननेकी अशक्यता—शङ्काकार कहता है कि देखिये ! मृत्पिडमें तिल आदिककी अपेक्षासे सादृश्य विशेष पाया जाता है याने सभी तिल यद्यपि समान नजर आ रहे हैं, किंतु मृत्पिडसे जो घट बनता है उसमें सादृश्य विशेष पाया जाता है, इस कारणसे मृत्पिड घटमें उपादान संतान आदिकका नियम बन जाता है और तिल आदिकमें यह नियम नहीं बनता। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि परमार्थसे क्षणिकवादमें सादृश्य का भी अभाव बनता है, किसी विशेषमें सादृश्य सिद्ध नहीं हो सकता सामान्यकी तरह। जैसे कि स्वलक्षणवादियोंके यहाँ स्वलक्षण ही वस्तु है, सामान्य वस्तु नहीं है, इसी प्रकार सादृश्य भी वस्तु नहीं है और उसका कहीं भी सम्भवपना न बन सकेगा। यदि शंकाकार असत्कार्यकारण व्यावृत्तिसे सादृश्यकी कल्पना करे अर्थात् जो अतत् कार्य है और अतत्कारण है उनसे अलग है। यह इस तरह अथवा यों सीधे तौरसे समझिये कि असादृश्यसे व्यावृत्ति होनेका नाम सादृश्य है। यदि ऐसी कल्पना करे तब फिर उस काल्पनिक सादृश्यमें विशेष क्या बनेगा ? जिससे कि यह कथन शोभा दे कि सादृश्य विशेषसे मृत्पिड आदिकमें विशेष पाया जाता है, यह बात विचार करके कहो। जब सादृश्य कल्पित है, वस्तु न रही तो सादृश्यका विशेष भी क्या रहेगा ? और किसी अवस्तुको देखकर कोई निर्णय बनाये उस वस्तुत्वके कारण तो वह भी बात ठीक न बनेगी।

क्षणिकवादमें वैलक्षण्यमानवधारणके सादृश्यका हेतु बतानेकी अशक्यता—शंकाकार कहता है कि वैलक्षण्यका अनवधारण होना ही सादृश्य विशेषका का कारण है याने मृतपिण्ड घट आदिकमें वैलक्षण्यताका निर्णय नहीं है, अभेदका अध्यवसाय है इसलिए सादृश्य विशेष बन जाता है, सादृश्यमें भी वैलक्षण्यका अनवधारण है। यों सादृश्य विशेष बन जाता है। इसके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो इस तरह काले तिल आदिकमें जो विभिन्न मंतव्य हैं उनमें भी इसी कारण सादृश्य विशेष बन जायगा। वहाँपर भी वैलक्षण्यका अनवधारण है सो वहां अभेद अध्यवसाय बन जाता है और, फिर इस तरह बात करनेसे तो इतरेतराश्रय दोष भी आता है। वह किस तरह सो सुनो जब सादृश्य विशेष सिद्ध हो ले तब तो मृतपिण्ड आदिक में वैलक्षण्यका अनध्यवसाय बने अर्थात् अभेद अध्यवसाय बने और जब मृतपिण्डमें वैलक्षण्यका अनध्यवसाय बने और जब मृत्पिण्डमें वैलक्षण्यका अनध्यवसाय सिद्ध हो तब सादृश्य विशेषका निश्चय हो तो यों इतरेतराश्रयके प्रसंगमें किसी भी एकका निर्णय नहीं हो सकता।

अनिश्चित सादृश्यविशेषसे वैलक्षण्यानवधारण माननेपर दोष प्रसंग का कथन—शंकाकार कहता है कि अनिश्चित सादृश्य विशेषसे ही अभेद अध्यवसाय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रूप वैलक्षण्यानवधारण अर्थात् वैलक्षण्यका अनवधारण निश्चित हो जायगा याने अनिश्चित सादृश्य विशेषसे ही अभेदका अध्यवसाय बन जायगा। अभेद अध्यवसाय बनानेके लिए सादृश्य विशेष कारण है, पर इसका निश्चय बन जाता हो इसकी निश्चितता नहीं है। यों अनिश्चित ही सादृश्य विशेषसे अभेद अध्यवसाय बन जायगा और उस अभेद अध्यवसायसे याने वैलक्षण्यके अनवधारणसे सादृश्य विशेषका अनुमान बन जायगा। इस तरहसे उन दोनोंमें याने सादृश्य विशेष वैलक्षण्यके अनवधारण में इतरेतराश्रय दोष न रहेगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस तरहसे तो जो बालक जुगलिया हैं अर्थात् एक साथ उत्पन्न हुए हैं उनमें भी वैलक्षण्यका अनध्यवसाय है तो उससे वहांपर भी अन्वयका प्रसङ्ग आ जायगा। एक साथ उत्पन्न हुए बालकमें भी एक संतानका अन्वय बन जायगा, क्योंकि सादृश्य विशेषका अनुमान बन गया है वहाँ वह ही यह है इस प्रकारका वहाँ अभेद अध्यवसाय सम्भव हो जाता है। इस कारणसे वहाँ एक साथ उत्पन्न हुए बालकोंमें भी अन्वय बननेका प्रसङ्ग आ जायगा।

निरन्वयवादमें अनुपादानसे उपादानकी विशिष्टता कहनेकी अशक्यता

शंकाकार कहता है कि निरन्वय होनेपर भी वहां ऐसी प्रकृति पाई जाती है कि जिस प्रकृतिके द्वारा तंतु आदिक अन्य कारणोंसे प्रकृत कारणक्षण अपने आपको विशिष्ट सिद्ध कर देता है याने मृत्पिंड घट आदिक ये भी अत्यन्त भिन्न हैं इनमें अन्वय नही पाया जाता, फिर भी इस एक सतानमें चलने वाले क्षणोंमें ऐसी प्रकृति पाई जाती है कि जिससे यह भेद सिद्ध हो जाता है कि पट आदिकसे इस मृत्पिंड घट आदिकमें ऐसी विशेषता है कि यहां सम्बन्ध बन जाता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात कहना भी असङ्गत है, क्योंकि जिस कारससे भिन्न संतानमें भी सर्वथा भेद बताया है वैसे ही अभिन्न-संतानमें भी सर्वथा भेद समान रूपसे पाया जाता है। अन्वयका जैसे घट पटके बीच अङ्गीकरण नहीं किया गया है अर्थात् घट पटमें अन्वय नहीं माना गया है, उसी प्रकार मृत्पिंड और घटमें भी अन्वय नहीं माना गया है। तो जब भेदकी समानता है तब यह कैसे कहा जा सकेगा कि पट आदिकसे मृत्पिंड घटमें कोई प्रकृति विशेष पाई जाती है। जब भेद समानरूपसे है तब कहाँ सभी जगह एक सी बातें बनेंगी। उस प्रकृतिमें जब अन्वय नहीं देखा जा रहा तो सभी जगह वैलक्षण्य ही रहेगा और दूसरी बात यह है कि पदार्थमें अन्वय और विशेष न मानने पर तो अवस्तु ही सिद्ध होगा, विशेष और सामान्य अगर ये नहीं पाये जाते हैं कहीं तो विशेष और सामान्यरहित वस्तुका कहीं सद्भाव ही नहीं पाया जाता तो जिस कारण से सामान्य विशेष रहित कुछ वस्तु होता ही नहीं है तब यह कारणकी प्रकृति मानना चाहिए कि जिस द्रव्यरूप प्रकृतिके द्वारा यह कारण पूर्व स्वभावका परित्याग उत्तर स्वभावका ग्रहण और इन दोनोंके आधारभूतकी स्थिरता अर्थात् उत्पादव्ययध्रौव्यरूप को प्रतिक्षण पदार्थ धारण करता है सो इस ही कारण यह उपादानका नियम सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है। यदि केवल पूर्वस्वभावका परिहार उत्तरस्वभावका उपादान माननेपर और वहाँ ध्रौव्यरूपको स्वीकार न करनेपर उपादानका नियम नहीं बन सकता है। जैसे कि सर्वथा ध्रुव नित्य पदार्थमें उपादानका नियम नहीं बना करता है इसी प्रकार अत्यन्त विलक्षण अन्वयरहित ध्रुवतासे परे केवल एक क्षणमात्रवर्ती पदार्थमें भी उपादानका नियम नहीं बन सकता है।

अधिकरणकी स्थिति माने बिना पूर्वस्वभाव परिहार व उत्तरस्वभाव ग्रहणकी असिद्धि—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि ध्रुवता नहीं रहती, केवल पूर्व स्वभावका परिहार और उत्तरस्वभावका ग्रहण रहता, इतनेपर भी कथंचित् उपादान का नियम हम कल्पित करने लगेंगे। तो इसके समाधानमें कहते हैं कि यदि अधिकरण की स्थिति न माननेपर वहाँ उपादानका नियम कल्पित कर लिया जाता है, तो कार्य की उत्पत्तिमें इससे ही यह कार्य होगा, इस प्रकारका विश्वास कैसे किया जा सकता है? लोग प्रतिदिन ही अपने विचारके अनुसार कार्य सम्पादन करनेमें जुट जाते हैं। उनको विश्वास रहता है कि इस आटेसे रोटी बन ही जायगी! लेकिन अब अन्वय तो माना नहीं जा रहा ध्रुवरूपता स्वीकार नहीं की जाती है और अत्यन्त भिन्न-भिन्न सब क्षण हैं, ऐसी स्थितिमें भले ही होगई बातमें कोई कल्पना कर ली जाय मगर लोगोंके ये विचार कैसे सही हो सकते हैं कि इस तरह यह ही कार्य होगा? यह विश्वास नहीं हो सकता! यदि शङ्काकार कल्पनामात्रसे उपादानके नियमकी कल्पना करता है तो कार्यकी उत्पत्तिमें कोई निश्चय और आश्वासन न बन सकेगा स्वप्नकी तरह। जैसे स्वप्नमें कुछ से कुछ कार्य बनते देखे जाते हैं, लेकिन वह तो भ्रम है, स्वप्न दशामें एक कल्पना मात्र है, उससे कहीं यह नियम न हो जायगा कि इस तरह कार्य उत्पन्न हो जाता है। इस कारणसे अत्यन्त असत् कार्यकी जब उत्पत्ति होने लगी क्षणिकवादमें, क्योंकि वहाँ सद् द्रव्य स्वीकार नहीं किया जा रहा। सभी पदार्थ असत् ही उत्पन्न होते हैं, वे द्रव्य रूपसे भी पहिले नहीं रहते। तो यों अत्यन्त असत् कार्यकी उत्पत्ति माननेपर तंतुओंसे पट आदिक ही बनेंगे, उनसे घट आदिक न बनेंगे, ऐसा नियम कैसे सिद्ध हो सकेगा? क्योंकि यदि असत् घट है तो असत् पट है, अब वहाँ रखे हुए हैं तो उन तंतुओंके द्वारा कपड़े ही बनें, घट न बने, यह नियम कैसे बनेगा? क्योंकि इसका कोई कारण नहीं बनाया जा रहा। अतः यह बात कहना कि कल्पना मात्रसे उपादानका नियम बन जायगा, सो यह बात अत्यन्त असङ्गत है।

पूर्वपूर्वविशेषसे उत्तरोत्तरके नियमकी कल्पनाकी अशक्यता—शङ्काकार कहता है कि देखिये, पूर्व पूर्व विशेषसे उत्तर-उत्तरका नियम बना लिया जायगा याने जिस कार्यके सम्बन्धमें विचार चलाया जा रहा है ऐसे विवक्षित कार्यकी उत्पत्ति में यों नियमकी कल्पना बन जायगी कि पहिले पहिलेके क्षण विशेषसे उत्तर-उत्तरके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षण बनते रहते हैं। यों नियमकी कल्पना कर ली जायगी। तो इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो जो उपादान नहीं है, जैसे कपडेके लिए मृत्पिंड उपादान नहीं है, तो अनुपादानमें भी पूर्व पूर्व विशेषसे उ र-उत्तरके नियमकी कल्पना कर लीजिए! अर्थात् तंतुओंसे घट बन गया, मृत्पिडके क्षणसे पटक्षण बन गया, यों भी नियमकी कल्पना बनालो। शङ्काकार कहता है कि तंतु और घट आदिकमें ऐसे उपादान नियम की कल्पना यों नहीं बन सकती है कि वहाँ उस तरह देखा नहीं जा रहा। पूर्वक्षण अभेदाध्यवसायके प्रयोगसे उत्तरक्षणको उत्पन्न किया करता है। जैसे कि मृत्पिडसे घटका उत्पाद देखा जाता है उस तरह मृत्पिड और तंतुओंमें कार्य नहीं देखा जारहा, इससे वहाँ नियमकी कल्पना नहीं कर सकते हैं। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि भाई, इसी सम्बन्धमें तो विचार चल रहा है और जहाँ विवाद चल रहा है बस उस हीको नियमका कारण बता दिया यह बात तो नहीं कही जा सकती है, जिस बातका विवाद है उस बातको नियामक बतावें तो यह तो अविचारपनेकी बात है। यही तो सिद्ध किया जाना है कि मृत्पिडसे घट कैसे बन जायगा, जबकि वहाँ द्रव्यरूपसे भी अन्वय न माना जाय, तो विवादापन्नवाद निर्णयका हेतु नहीं हो सकता।

क्षणिकपक्षमें यथादर्शन नियमकल्पनाकी प्रतीतिकी असिद्धि— शङ्काकार कहता है कि जिस ढङ्गसे अनुपादानकी बात लगाई जा रही है, उस ढङ्गसे नियम नहीं बनता, क्योंकि ऐसा देखा नहीं जा रहा है। जैसा देखा जाय वैसा ही नियम बनाना चाहिए। मृत्पिड और घट इनमें परस्पर उस प्रकारका दर्शन नहीं है कि वे एक दूसरेके उपादान हों, इस कारणसे उसी प्रकार न देखा जानेसे यहां नियम की कल्पना बन जाती है कि मृत्पिड और घट ये परस्पर कारण–कार्य हैं? इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि इस प्रकारके दर्शनसे नियमकी कल्पना बनाते हो तो देखिए हेतुमें भी अर्थात् इस अदर्शन हेतुमें घटके विषयमें ऐसा कोई कारण नहीं बन पाता कि वहाँ आतान वितानरूपमें फैले हुए विशेष तंतुओंमें पटका स्वभाव देखा जा रहा है तो वहाँ तंतु सामान्य और तंतु विशेषमें विधि और प्रतिषेध नियमका कोई कारण नहीं हो पाता है। अतएव यथादर्शन नियम कल्पनाकी प्रतीति करना व्यर्थ है। देखिये तंतु सामान्य और आतान वितानरूपमें फैले हुए वे खास तंतु विशेष इनमें किसी एक की विधि बन जाय और एकका निषेध बन जाय, इसका नियम बनानेका कोई कारण नहीं है। तंतु ातान वितान विशेषकी अपेक्षा रखे तो वह पट स्वभावको प्राप्त करले, ऐसा नहीं देखा जाता। जिस कारणसे कि तंतु सामान्यमात्रमें विधिका नियम बनाया जा सके और तंतु विशेषमें प्रतिषेधका नियम बनाया जा सके और तंतु सामान्यसे निरपेक्ष विशेष ही पटका स्वभाव स्वीकार करले ऐसा भी नहीं देखा जाता, जिससे कि तंतु विशेषकी विधिका नियम और तंतु सामान्यके प्रतिषेधका नियम बैठाला जा सके अर्थात् जो भी कारण है वह सामान्य विशेषात्मक है। कोई विशेष हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अथवा सामान्य हो ऐसा कुछ भी उपादान कारण नहीं बनता। उपाधि और अनुपाधियोंको छोडकर और कुछ भी निमित्त ऐसा नहीं सिद्ध होता जो तंतु सामान्यकी विधि और तंतु विशेषके प्रतिषेधका नियम बना दे। जिससे कि विधि प्रतिषेधके नियम का अभाव होनेपर भी सामान्य विशेषात्मक प्रतीतिका अपलाप करना शोभा नहीं दे सकता।

तन्तुसामान्यके प्रतिषेधमें तन्तुविशेषके भी प्रतिषेधका प्रसंग—शङ्काकार कहता है कि देखिये ! अनुमान प्रयोग है तंतु आदिकमें अन्वय है नहीं, क्योंकि उपलब्धि लक्षण प्राप्त होनेपर भी अनुपलब्धि होती है अर्थात् तंतु सामान्य कुछ होता तो उपलब्धिमें आना चाहिए था लेकिन उसका सद्भाव नहीं पाया जाता इस कारण तंतु पट आदिक सामान्य कुछ भी वस्तु नहीं है, यों यह स्वभावोपलब्धि हेतु तंतु सामान्यके प्रतिषेध करनेका नियामक बन जायगा—स्वभावोपलब्धि हेतु तंतु सामान्यका प्रतिषेध सिद्ध कर देगा, सो विशेषमात्रकी ही उपलब्धि होती है याने स्वलक्षणात्मक पदार्थ ही पाया जाता है। जैसे कि उस पटमें तंतु हैं जो कि फैले हुए हैं, वे विशेष ही तो पाये जाते हैं तो विशेषमात्रकी उपलब्धि होनेसे तंतु विशेषकी विधिका नियम बन जाता है। यह कैसे कहा कि तंतु सामान्य और तंतु विशेषके विधि और प्रतिषेध का नियम नहीं है। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि तंतु आदिक सामान्य जैसा कि शङ्काकार खुद कहता है कि वस्तु नहीं है। क्योंकि उसकी अनुपलब्धि है तो इसी प्रकार तंतु सामान्यकी अपेक्षा न रखकर कोई तंतु विशेष भी पाया नहीं जाता, अतएव तंतु विशेषके प्रतषेधकी भी सिद्धि हो जाती है। तो जब कि परस्पर निरपेक्ष सामान्य और विशेषकी उपलब्धि नहीं है तब यह मान लेना चाहिए कि उपलब्धि लक्षण प्राप्तकी अनुपलब्धि निरपेक्ष सामान्य विशेष का प्रतिषेध करेगा, पर सामान्यविशेषात्मक वस्तुका प्रतिषेध न कर सकेगा जिस सामान्यका विशेषके साथ अन्वय नहीं उस सामान्यका अभाव है। जिस विशेषका सामान्यके साथ सम्बन्ध नहीं है, अवस्थान नहीं है उस विशेषका अभाव है। तो जो निरपेक्ष सामान्य और निरपेक्ष विशेष माने उसके मंतव्यका तो खण्डन किया जासकता पर सामान्य विशेषात्मक वस्तुका अभाव नहीं बताया जा सकता कि अनुपलब्धि हेतुसे सामान्य या विशेषका अभाव सिद्ध हो जाय। यों उभयात्मक वस्तुमें जब सामान्यके प्रतिषेधका नियम न बन सका तब विशेष प्रसङ्ग बढ़ानेसे लाभ क्या है ? केवल विशेष ही स्वलक्षण है वस्तु, यह सिद्ध न हो सका। सर्वथा अर्थात् परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा न रखकर अन्वय और विशेष इन दोनोंका प्रतिषेध करनेका नियामक कोई निमित्त नहीं है, किन्तु सामान्य विशेषात्मक वस्तुके सद्भावको सिद्ध करने वाला प्रमाण मौजूद है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक हैं, इसकी सिद्धि उ अर्थक्रियाकारितासे सिद्ध होती है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक है, क्योंकि वस्तुका अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्रियाकारी है, उसकी क्रिया होती है, परिणमन होता है। इससे सिद्ध है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है, साथ ही समस्त प्रमाणोंकी उपलब्धिसे उसकी प्रसिद्धि है और यह भी शङ्का न करना चाहिए कि एक वस्तु उभयरूप कैसे बन जायगी ? उन दोनोंका तो परस्परमें विरोध है सो विरोध आदिक भी वहाँ सम्भव नहीं है। यों जब असत्में कार्यपना सिद्ध नहीं होता और असत्में उपादानका नियम भी नहीं बनता, तो क्षणिक एकान्त पक्षमें अन्य भी दोष आते हैं जिनको अब कारिका द्वारा आचार्यदेव कहते हैं :—

न हेतुफलभावादिरन्यभावादनन्वयात् ।
सन्तानान्तरवन्नैकः सन्तानस्तद्वतः पृथक् ॥ ४३ ॥

क्षणिकैकान्तपक्षमें सन्तानान्तरकी तरह हेतु फल आदिके अभावका प्रसंग—क्षणिकैकान्तका आग्रह करनेपर न तो हेतु सिद्ध होता, न फल सिद्ध होता, क्योंकि वे जब अन्य अन्य ही हैं, अपने अपने क्षणमें परिपूर्ण वस्तु होनेसे एक दूसरेसे जब जुदे ही हैं तो उनका परस्परमें अन्वय तो बन नहीं सकता। एक धारा उनमें नहीं रह सकती है। फिर यह कैसे कहा जा सकेगा कि यह तो कारण है और यह कार्य है। जैसे कि अन्य संतानोंमें कार्य कारण भाव नहीं बताया जा सकता। क्योंकि वे भिन्न भिन्न हैं, एक दूसरेमें अन्वयरूप नहीं है। जैसे अनेक पुरुष एक साथ खड़े हैं। वे भिन्न भिन्न सतान हैं तो उन जीवोंमें भी एक दूसरेका उपादान कारण तो नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार एक देहमें भी नाना जीव बन रहे हैं लेकिन वे सब अपने अपने क्षणमें स्वतंत्र परिपूर्ण हैं और एक दूसरेसे पृथक हैं। तब उनमें भी अन्वय कैसे बन सकेगा कि इसका यह उपादान कारण है ? तो जैसे भिन्न संतानोंमें कारण कार्यभावकी सिद्धि नहीं होती उसी प्रकार मृतपिण्ड घट आदिक जैसे एक संतानमें भी कारणकार्यभावकी सिद्धि नहीं हो सकती। संतान वालेसे कोई एक संतान पृथक नहीं हुआ करता, जिससे कि एक संतानके कारण उनमें कुछ अन्वय या अभेदकी कल्पना की जाय क्षणिक एकान्त पक्षमें भी यह बात सिद्ध होती है कि वहाँ न हेतु बनेगा न कार्य बनेगा। पूर्व और उत्तर क्षणोंमें जब कि वे एक दूसरेसे बिल्कुल जुदे जुदे ही हैं तो उनमें कारण कार्य भाव कैसे बनेगा ? और कर्मफल सम्बन्ध भी क्यों बनेगा ? अर्थात् इस पूर्वक्षणने कर्म किया, उत्तरक्षणके कर्मबन्ध हो अन्यक्षणको कर्मफल मिले, यह सम्बन्ध कैसे बनाया जा सकेगा ? जैसे भिन्न भिन्न संतानोंमें कर्म कर्मफलकी बात तो नहीं बतायी जा सकती कि यज्ञदत्तने पाप किया तो देवदत्त उसका फल भोगे, ऐसे ही एक शरीरमें जितने ज्ञानक्षण बन रहे हैं जब वे अत्यन्त भिन्न हैं उनमें अन्वय नहीं है तो एक क्षणका किया हुआ पाप दूसरा क्षण कैसे भोग लेगा ? और क्षणिकमें प्रवृत्ति आदिक भी सम्भव नहीं हैं। जैसे किसी जीवने पानी देखा तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पीनेके लिये उसके बादका जीव चला जाय और पीले यह बात कैसे बनेगी ? क्योंकि एक जीव तो माना नहीं जा रहा है। जितने क्षण हैं क्षण क्षणमें एक एक जीव माना जा रहा तो उनमें कैसे प्रवृत्ति आदिक बन सकेंगे ? जहाँ कोई अन्वय माना ही नहीं जा रहा है तो जैसे अन्य संतानोंका अन्वय नही है तो उनमें कार्य कारण भाव कर्मफल सम्बन्ध आदिक नहीं बनते हैं। इसी प्रकार क्या कि देहमें या एक वस्तुमें भी ये कारण कार्यभाव न बन सकेगा।

पूर्वोत्तरक्षणोंमें एक सन्तानत्वकी भी असिद्धि—शंकाकार कहता है कि मृत्पिण्ड घट आदिकमें तो एक संतानपना है पूर्वक्षण और उत्तर क्षणोंमें एक संतानपना होनेसे प्रवृत्ति आदिक कारण कार्य भावादिक सब बातें सिद्ध हो जायेंगी। तो इसके समाधानमें कहते हैं कि यह बात केवल कह देने मात्रसे तो न बन जायगी। जब पूर्वक्षण और उत्तर क्षणोंका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। अन्वय नहीं। भिन्न भिन्न ही तत्त्व है तो जैसे अन्य संतानोंमें कारण कार्य भाव नहीं बनता यों ही कल्पित संतानमें भी कारण कार्य भाव कैसे बन सकेगा ? कोई एक संतान संतानियोंसे पृथक नहीं है। स्वयं भी क्षणिकवादियोंने ऐसा कहा है कि जिसमें भेद विदित नहीं होता ऐसे संतानी ही संतान कहे जाते हैं तो उनके कथनसे भी यह पुष्टि होती है कि संतान संतानियोंसे भिन्न चीज नहीं है, समस्त क्षणोंमें भेदकी समानता होनेसे। जैसे देखते हैं अनेक संतानोंमें परस्पर भेद है इसी प्रकार पूर्व क्षण और उत्तरक्षणोंमें भी जब परस्पर भेद है तो वहाँ यह कैसे बताया जा सकेगा कि जहाँ भेद विदित नहीं हो रहा ऐसा पूर्वक्षण उत्तर क्षणोंमें एक संतान मान लिया जाय और कारण कार्यभाव मान लिया जाय। वहां तो सभी क्षणोंमें परस्पर समानरूपसे भेद है। दूसरा दोष यह आता है कि उन समस्त क्षणोंमें संतानकी संकरताका प्रसंग हो जाता है। जैसे यज्ञदत्तके शरीरमें पूर्वतर होने वाले ज्ञानक्षणमें एक संतानपना मान रहे हो तो क्यों मान रहे हो ? वह पूर्वक्षण उत्तरक्षणमें पूरा परस्पर जुदा-जुदा है और यज्ञदत्त चित्रमित्र आदिक अनेक पुरुषोंमें होने वाले ज्ञानक्षण भी भिन्न भिन्न हैं। तो बजाय इसके उन अनेक देह वाले ज्ञानक्षणोंमें एक संतानपना मान लिया जाय। यहां ही क्यों मानते, क्योंकि जब भेद सबमें पूरा है तो भेदका विदित न होना वहां भी सम्भव हो बैठे। ऐसा कोई विशेष कारण नजर नहीं आता कि यह नियम बनाया जा सके कि यह पूर्वक्षण हो तो अभेदस्पर्शके विषयभूत हो और अन्य संतान वालेके पूर्वक्षण उत्तरक्षण अभेदरूपसे न जाने जायें ऐसा नियम बनानेका कोई कारण नहीं है। कोई से भी कोई क्षण हों, संतान बनाया जा सकता है।

विलक्षणोंमें एकसन्तानत्व व भिन्नसन्तानत्वके विवेककी अशक्यता—जब वे समस्त क्षण विलक्षण हैं, एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न हैं, फिर भी वे स्वभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से असंकीर्ण हैं अर्थात् अन्य संतानोंके साथ वे क्षण अभेद रूप नहीं हो पाते हैं। ऐसी बात कहना तो इस तरहसे अविचरित कथन है कि जैसे कोई कहे कि खरगोशके सींग गोल होते हैं या इस प्रकारके होते हैं। जब खरगोशके कोई सींग ही नहीं है तो उनको गोल लम्बा आदिक विशेषण सहित बताना उसको कौन बुद्धिमान स्वीकार कर लेगा। इसी तरह जब वे सारे क्षण परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं तो वहाँ भी ऐसा कौन स्वीकार कर लेगा ? अन्य संततियोंमें अभेदरूपसे रहता है। संतति ही तो पहिले सिद्ध कर लीजिये कि यह संतान है और यह अन्य संतान है।

सन्तानकी प्रत्यक्षागोचरता— प्रत्यक्षसे जो बात विदित हो वहां ही तो स्वभावका उत्तर दिया जा सकता है। किन्तु जो प्रत्यक्षसे विदित नहीं है, अप्रतीत है उस पदार्थमें स्वभावका आश्रय किया जाना अशक्य है। खुद भी क्षणिकवादियोंने यह कहा है कि प्रत्यक्षसे प्रतीत हुए पदार्थमें यदि कोई प्रश्न करता है तो वहां उत्तर स्वभाव कहकर देना चाहिए, क्योंकि प्रत्यक्षके विषयभूत अर्थमें अनुपपन्नता सिद्ध नहीं होती। तो जब स्वयं यह कथन किया है तो इससे सिद्ध है कि प्रत्यक्षसे अप्रतीत अर्थ में स्वभावरूप उत्तर नहीं दिया जा सकता है। परस्पर विलक्षण भिन्न भिन्न क्षणोंमें जब कि अन्वय जरा भी नहीं है तो अपनेमें और बाहरमें सभी जगह संततियाँ असंकीर्ण प्रत्यक्षसे प्रतीत होती हैं यह नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि प्रत्यक्ष एक क्षण को विषय करने वाला माना गया है। प्रत्यक्षको निराकार दर्शनको निर्विकल्प प्रत्यक्ष क्षणिकवाद सिद्धान्तमें स्वलक्षणका विषयभूत कहा गया है। वह संतानका विषय करने वाला नहीं होता। संतानको अवस्तु कहकर उसे सविकल्प ज्ञानका विषय बताया है। अथवा कल्पना या विचारसे सिद्ध किया गया है। तो प्रत्यक्षका विषय नहीं है। संतानका जानना।

संतानकी अनुमानागोचरता—अनुमानसे भी संतानकी सिद्धि नहीं समझी जा सकती है। क्योंकि अनुमान बनानेमें या तो स्वभाव लिङ्ग होना चाहिए या कार्य लिङ्ग होना चाहिए। ऐसा हेतु होना चाहिए कि जो या तो स्वभावरूप हो या कार्य रूप हो और उसके साध्यके साथ सम्बन्ध हो और उसके साध्यके साथ सम्बन्ध हो सो ऐसा कोई हेतु नहीं पाया जाता। अतः अनुमानसे भी संतानकी सिद्धि नहीं होती, प्रत्यभिज्ञान आदिक भी संतानका अनुमान करानेका चिन्ह नहीं बन सकता। क्योंकि प्रत्यभिज्ञानका कोई दृष्टान्त ऐसा न क्षणिकवादी दे सकेंगे कि जिसमें अन्वय या व्यतिरेक सिद्ध कर सके क्षणिकवाद सिद्धान्तके अनुसार किसी भी दृष्टान्तमें न तो अन्वय सिद्ध है और न कहीं व्यतिरेकका निश्चय बनता है तब कोई चिन्ह ऐसा नहीं बताया जा सकता कि जिससे अनुमानकी सिद्धि की जा सके। अतः संतानके सिद्ध न होनेसे फिर अपनी संतान परकी संतान ऐसा नाम लेकर कारण कार्य भावकी सिद्धि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करना अयुक्त है।

अन्यथानुपपत्तिसे भी सन्तानसिद्धिकी अशक्यता—प्रत्यभिज्ञान आदिक का अन्वय व्यतिरेक निश्चित् न हो सकनेसे क्षणिकवादमें *अन्यथानुपपत्ति भी संतानके* सिद्ध करनेमें असमर्थ है, क्योंकि संतानके अभावमें अर्थात् कृष्ण तिलमें संतानका अभाव होनेपर भी उसके सदृश यह तिल है, यह प्रत्यभिज्ञान उदित होता है अतएव प्रत्यभिज्ञान आदिकसे संतानान्तरमें संतान नहीं, यह नियम नहीं बनाया जा सकता। प्रत्यभिज्ञानसे संतानकी सिद्धि यों नहीं हो सकती कि भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें सदृशता होनेसे प्रत्यभिज्ञान बन जाता है, पर हैं वे बिल्कुल भिन्न संतानमें। तो जब संतानका अन्वय व्यतिरेक प्रत्यभिज्ञानसे सिद्ध नहीं होता तो हेतु भी एक संतानका निश्चय करनेमें असमर्थ है। उन क्षणोंमें जो केवल द्रव्यकी प्रत्यासत्ति ही एक संतानको सिद्ध करनेमें समर्थ है अर्थात् जो पूर्वक्षण हुआ है और उसके बाद उत्तर क्षण होगा। वे सारे क्षण एक पदार्थमें हो रहे हैं तो एक द्रव्यसे सम्बन्धित होनेके कारण वहाँ संतान और उपादानका नियम बन सकता है और इस ही कारण अन्य संतानोंमें संकरता भी नहीं आ सकती। तो जिस कारणसे उन क्षणोंमें प्रत्यभिज्ञानसे एक द्रव्यकी प्रत्यापत्ति ही सिद्ध होती है तो यह निर्णय क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तसे विरुद्ध पड़ जाता है। इसी प्रकार जब प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे संतानकी सिद्धि नहीं हुई है तब यह बात स्वीकार कर लेना चाहिए कि वे पदार्थ एक पदार्थमें परिणति-रूपसे पाये जाते हैं और इसी कारण संतानान्तरोंसे वे सब पदार्थ असंकीर्ण सिद्ध होते हैं। यदि एक एक क्षणवर्ती पदार्थोंको ही परिपूर्ण माना जाय तो वहाँ संतानकी संकरताको दूर नहीं किया जा सकता है। तब यह मानना चाहिए कि जगतमें जो भी पदार्थ हैं वे अनादि अनन्त हैं। उनमें प्रतिक्षण परिणमन होते रहते हैं। वे परिणमन परस्परमें भिन्न हैं। किन्तु हो रहे हैं एक द्रव्यमें ही, अतएव वस्तु नित्यानित्यात्मक सिद्ध होती है।

अन्येष्वनन्यशब्दोऽयं संवृत्तिर्न मृषा कथम् ?
मुख्यार्थः संवृत्ति स्याद्विना मुख्यान्न संवृत्तिः ॥४४॥

सर्वथा भिन्नक्षणोंमें सन्तानी सन्तानकी अनुपपत्तिपर विचार—यदि क्षणिकवादियोंका यह अभिप्राय हो कि भिन्न भिन्न क्षणोंमें जो अनन्य शब्द वाली संतान मानी जा रही है वह सम्वृत्तरूप है, वास्तविक नहीं है तो फिर सम्वृत्ति और संतान मिथ्या क्यों न हो जायगी ? भिन्न भिन्न क्षणोंमें यह वही क्षण है इस प्रकारके भाव वाला संतान सम्वृत्ति मात्र ही मानोगे, मुख्य न मानोगे तो वह कल्पना मिथ्या है। और मिथ्या कल्पनासे अर्थक्रिया नहीं बना करती। वहाँ भी नीतिसे परखा जाय तो सम्वृत्ति होती है वह मुख्य अर्थ वाली होती है अर्थात् जिसके सम्बन्धमें कल्पना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की जाती हो तो मुख्य अर्थ यदि न हो तो वह कल्पना नहीं उठ सकती है। यदि कोई पदार्थ ही नहीं है तो तद्विषयक कल्पना ही कैसे बनाई जा सकती है? इससे मान लेना चाहिए कि संतानियोंसे अभिन्न संतान हुआ करती है। संतानका अर्थ है परिणमन। जो प्रतिक्षण ज्ञानक्षण अर्थक्षण आदिक विदित होते हैं वे सब संतानी हैं और उनसे अभिन्न है संतान। संतानको छोड़कर अन्य जगह संतानका अभाव होनेसे संतान की कल्पना करके क्षणिकवादका पोषण करना अशक्य है और जिसको संतान कहा गया है क्षणिकवादमें उसको मान लीजिए कि यह द्रव्यका इस तरहका एक दूसरा नाम ही रख दिया गया है। इसमें संतान है क्योंकि सुख आदिक परिणामोंसे भिन्न व्यापक जो वस्तु है वही आत्मा कहलाता है। सुख आदिक जितनी भी इसमें परिणतियाँ गुजरती हैं उन सब परिणतियोंमें एक आत्मा व्यापक है तो आत्मा तो नित्य रहा, व्यापक रहा, और ये क्षण व्याप्य रहे, अनित्य रहे। सो यही मानना चाहिए कि एक द्रव्य है और उसके प्रतिक्षण परिणमन होते रहे हैं। संतानियोंसे भिन्न यदि कुछ संतान माने जाते हैं तो वहाँ यह खोज करिये कि वह संतान नित्य अथवा अनित्य है? यदि नित्य और अनित्य दोनों प्रकारके विकल्प संतानमें जब क्षणिकवादी सिद्ध न कर सकेंगे तो मानना चाहिए कि कोई भिन्न संतान वास्तविक नहीं होती। इन्हीं विकल्पोंका अब विचार सुनो!

सन्तानकी नित्यताके व अनित्यताके विकल्पमें क्षणिकवादियोंकी इष्ट सिद्धिका अभाव—यदि संतान नित्य है, ऐसा विकल्प मानते हो तो यह बतलाओ कि वह संतान संतानियोंमें व्यापक बन रहा है सो अनेक स्वभावोंसे बन रहा है या एक स्वभावसे? जिस किसीको भी संतान समझा है क्षणिकवादियोंने जो कि सब संतानियोंमें व्यापक रहता है वह संतान यदि अनेक स्वभावसे व्यापक है तो ऐसा कहनेमें तो संतान अब नित्य और एकरूप रह नहीं सकता। जब संतानीको एक क्षणवर्ती माना है और उसको नित्यके साथ जोड़ रहे हैं तो अनित्य संतानी नित्यके साथ कैसे व्याप जायगा? अनेक स्वभावोंमें व्याप जाये तो वह संतान फिर नित्य न रहेगा एकरूप न रहेगा। वह तो जैसे संतानी है वही संतान है तब कोई भिन्न संतानका सद्भाव न बन सकेगा। तो वह संतान संतानियोंमें अनेक स्वभावसे व्यापक होता है, यह बात तो सिद्ध हुई नहीं। अब यदि यह कहोगे कि संतान संतानियोंमें एक स्वभाव से व्यापक हो रहा है तो संतानी भी अब एकरूप बन जायगा फिर संतान ही कहाँसे रहेगा? जो क्रमसे अनेकमें व्यापे उसको ही तो संतान कह सकेंगे। अब संतान एक स्वभावसे संतानियोंमें व्यापी रहता है, तो जब स्वभाव एक है तो संतानी भी एकरूप बन गए, तो भिन्न संतान कुछ न रहा। तो संतानको अगर नित्य स्वीकार करते हो तो भी नहीं बनता और अनित्य स्वीकार करते हो तब भी इष्ट सिद्धि नहीं है। संतान यदि अनित्य है तो वह संतान नहीं कहला सकता, क्योंकि संतानियोंकी तरह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही अब उसमें अनित्यता रही, एक क्षणवर्तिता रही तो वह प्रत्यभिज्ञानका विषय नहीं बन सकता। जैसे भिन्न-भिन्न परिणतियाँ अभेदको सिद्ध करने वाली नहीं हैं, इसी प्रकार भिन्न-भिन्न क्षणोंका संतान भी अभेदको सिद्ध करने वाला नहीं हो सकता।

संतानको संतानियोंसे भिन्न माननेपर नित्यानित्यमें भी उसकी असिद्धि यदि कोई यह आशङ्का करे कि संतान यदि संतानियोंसे भिन्न मान लिया और वहाँ नित्यानित्य इन दोनों विकल्पोंसे उसकी सिद्धि नहीं होती और दूषण आता है तो इसमें क्या आपत्ति आई ? तो सुनो ! अन्य दोष यह भी है कि कल्पनासे भिन्न भिन्न पदार्थोंमें अनन्यका व्यवहार किया है, तो अनन्य यह विशेषण शब्द विकल्प लक्षण वाला है। अतएव वहाँ एकत्व मानना उपचारसे ही बना है। क्षणिकवादमें अन्य अन्य क्षणोंमें यह अनन्य शब्द वाली कल्पना उपचारसे माना है और उसे ही संतान कहा गया है। तो जब वह केवल कल्पनामात्र है तो वह मिथ्या क्यों न हो जायगा ? जो केवल कल्पनारूप है जहाँ परमार्थ स्वरूप कुछ भी नहीं है वह तो मिथ्या कहलायगा। यहाँ शङ्काकार कहता है कि रहो यह व्यवहार मिथ्या अर्थात् अनेक पूर्वोत्तर क्षणोंमें जो संतानका व्यवहार लगा है, उनमें जो भेद समझते हैं वह सब मिथ्या व्यवहार है और ऐसा ही उसमें इष्ट है। तो इस शङ्काके उत्तरमें सुनो ! यदि संतानका व्यवहार मिथ्या है तो वहाँ कोई विशेष सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि पूर्व और उत्तर क्षणोंमें कार्य कारण भावके सम्बन्धका नियम न बन सकेगा। और तब पहिले कहे हुए दोष क्षणिकवादमें ज्योंके त्यों उपस्थित रहते हैं। परस्पर भिन्न क्षण वाले सब संतानियोंमें संकरता भी दूर नहीं की जा सकती। उपचरित कल्पना मात्र एक संतानके द्वारा किन्हीं भी इष्ट संतानियोंकी व्याप्तिका नियम नहीं किया जा सकता। अतएव सँवृति, संतान केवल कल्पना मात्र है। तो उस काल्पनिक संतानसे कुछ भी तथ्य सिद्ध नहीं हो सकता। यदि संतानको मुख्य अर्थ वाला मानते हो तब वह कल्पना नहीं कहला सकती है।

मुख्य माने बिना संवृत्तिकी भी अनुपपत्ति— शंकाकार कहता है कि कल्पना ही तो संतान कहलाती है। क्योंकि कल्पनाके ही द्वारा उस संतानको समझा गया और वहाँ उस प्रकारका उपचार किया गया है यह शंका भी युक्त नहीं है। क्योंकि संतानमें मुख्य प्रयोजनपनेकी सिद्धि नहीं हो सकती। मुख्य प्रयोजन तो उस संतानका यह है कि प्रत्यभिज्ञान आदिकके द्वारा मुख्य कार्यकी सिद्धि बन जाय। साथ ही यह भी समझना चाहिए कि मुख्यके माने बिना उपचारकी सिद्धि नहीं। जैसे किसी बच्चेका नाम आग रख दिया तो बच्चेमें जो आगका उपचार किया है या नामकरण किया है तो यह बात भी कल्पनामें तभी तो आयी जब कि कभी मुख्य अग्नि हुआ करती है। लोकमें अग्निनामक पदार्थ कुछ न हो तो उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यवहार भी नहीं किया जा सकता। तो यों पूर्व और उत्तर क्षणोंमें अभिन्नताका प्रत्यय स्खलित हो जाता है अर्थात् अभेद अध्यवसायकी सिद्धि नहीं हो सकती है। क्योंकि उस सम्वृत्तिके बारेमें विचार करनेपर उसकी परीक्षा करनेपर वह तथ्यभूत सिद्ध नहीं होता, इस ही कारण अमुख्य अर्थ वाली कल्पना अर्थात् उपचरित संतान प्रस्तुत अनन्यताका परिचय करानेमें समर्थ नहीं है। उपचरितसे किसी कार्यकी सिद्धि नहीं होती। यदि किसी बच्चे का नाम अग्नि रख दिया और उस बच्चेमें अग्निका उपचार कर दिया तो इससे कहीं रसोई बनानेके काम वह बच्चा तो न आ जायगा, उस अग्नि नामक बालकपर रोटी तो न सिक जायगी। तो उपचार कुछ भी प्रस्ताव को सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होता। जैसे किसी बच्चेमें अग्निका उपचार किया अथवा कोई बच्चा बड़ा क्रोध करने वाला है और उसे कोई अग्नि ही कह दे तो ऐसी कल्पना करने मात्रसे उसपर रसोई तो न बन जायगी। इसी तरह समझिये इन पूर्व उत्तर क्षणोंमें अभेदका उपचार करानेके लिए जो संतानका उपचार बताया गया है तो ऐसा उपचार संतान संतानियोंमें नियमका कारण नहीं बन सकता है कि इस संतानका यह संतान है। इस प्रकार संतानियोंमें सांकर्य आ जायगा। यह दोष ज्यों का त्यों अवस्थित है। क्योंकि संतानियोंसे भिन्न संतानियोंसे अभिन्न अथवा उभयरूप और अनुभयरूप कोई संतान सिद्ध नहीं होता और इसी कारण जो क्षणिकवादमें चार कोटियोंसे भेदाभेदकी अवाच्कताकी बात कही गई है वह भी मिथ्या हो जाती है। जैसे कि क्षणिकवादी चार विकल्पोंमें अपना विचार प्रस्तुत करते हैं वह भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्षणिकवादियोंका मत है कि।

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्त्ययोगतः।
तत्त्वान्यत्वमवाच्यं चेत्तयोः सन्तानतद्वतोः ॥४५॥

क्षणिकवादमें अभिमत अनभिलाप्यताका आशय—क्षणिकवादियोंका मंतव्य है कि जो जो धर्म होते हैं वे चार कोटियोंसे परखे जानेपर वचनके गोचर नहीं हो सकते। जैसे कि सत्त्व एकत्व आदिक धर्मोंमें चार कोटियोंसे विकल्प बनाये जायें तो उनमें वचनका योग नहीं होता। वे चार कोटियाँ यही हैं कि वह धर्म धर्मी से भिन्न है अथवा अभिन्न है या उभयरूप है अथवा अनुभयरूप है। संतान और संतानवानका धर्म जैसा कि संतानका धर्म माना है एकत्व और अन्यत्वके सम्बन्धमें अवाच्यताकी ही सिद्धि हो सकती है। यह बात सत्त्व एकत्व आदिक सर्व धर्मोंमें प्रसिद्ध है कि वह सत् है, असत् है, उभय है, अनुभय है। इन चार कोटियोंसे कथन में नहीं आ सकता है। तो यों ही संतान और संतानवानके सम्बन्धमें भी भेद है, अभेद है, उभय है, अनुभय है। इन चार कोटियोंसे वह अवाच्य ही रहेगा।

चार कोटियोंसे विकल्पकी वचनगोचरताका शङ्काकार द्वारा समर्थन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चार कोटियोंसे विकल्प ी वचनगोचरता किस प्रकार है सो सुनिये ! किसी भी प्रकार का वस्तुधर्म हो, बताये कोई कि वह सत है अथवा असत् है, या उभय है, अनुभय है ? यदि सत् है तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि असत् है तो शून्य पक्षमें जो दोष आते हैं वे दोष आयेंगे। यदि वे सद्सदात्मक हैं तो दोनों पक्षोंमें जो दोष है वह दोष वहां भी रहेगा। और यदि कहो कि अनुभय है तो न तो सत् है व असत् है। दोनोंका प्रतिषेध हो गया तो वह निर्विषय हो गया। अतएव चार कोटियोंमें विचार करनेपर वस्तु अवाच्य ही सिद्ध होता है। क्षणिकवादी दार्शनिक कह रहे हैं कि वस्तुमें जो भी धर्म बताया जाय उस सम्बन्धमें चार प्रकारके विकल्प हो सकते हैं। वस्तुसे धर्म अभिन्न है या भिन्न है. या उभयरूप है अथवा अनुभयरूप है। इन चारों ही विकल्पोंमें वस्तुके धर्मकी बात कही नहीं जा सकती है। जैसे धर्म यदि वस्तु मात्र हो गया। अब वहां दो बातें न रहीं कि धर्म हो और वस्तु हो। जब दोनोंमें अनन्यता हैं तो वह एक ही बात रह गयी। यों वस्तुमें धर्म नहीं कहा जा सकता। धर्म यदि वस्तुसे भिन्न है तो जो भिन्न हैं उसमें यह व्यपदेश नहीं किया जा सकता कि धर्म यह इस वस्तुका है। यों भी वस्तुमें धर्म नहीं बताया जा सकता। क्योंकि जब वस्तु और धर्म भिन्न भिन्न है तो उसका सम्बन्ध तो रहा नहीं। सम्बन्ध जब रहा नहीं तो यह व्यपदेश न बन सकेगा कि यह धर्म इस वस्तुका है। यदि धर्मसे वस्तुसे उभयरूप मानोगे अर्थात् भेदरूप है और अभेदरूप है तो इस उभयपक्षमें भी वे ही दोष आयेंगे जो भेदरूपमें दोष कहे थे और अभेदरूपमें दोष कहे थे ? यदि कहा जाय कि जो वस्तुका धर्म वस्तुसे अनुभयरूप है अर्थात् न भेदरूप है न अभेदरूप है तो इस अनुभय पक्षमें वस्तु निःस्वभाव हो गया अर्थात् अब उसमें कोई स्वभाव भी नहीं कहा जा सकता। यों वह वस्तु वचनोंके अगोचर हो गया। इस तरह चार कोटियोंमें कोई भी विकल्प धर्म अनभिलाप्य है अतएव उसके सम्बन्धमें कोई विकल्प उठाना उचित नहीं है। किन्तु जो कुछ है वह निर्विकल्प प्रत्यक्षके गोचर है।

सन्तान व सन्तानीमें अनन्यता है या सन्यता है इन विकल्पोंकी अयुक्तताका शङ्काकार द्वारा प्रतिपादन—उक्त प्रकार वस्तुका धर्मभेद रूप है, अभेद रूप है, उभय रूप है और अनुभयरूप है, इन चार कोटियोंसे जब अनभिधेयपना सिद्ध होता है अर्थात् वह जब वचनों द्वारा कहा नहीं जा सकता है तो सभी पदार्थोंमें संतान और संतानियोंके सम्बन्धमें वही प्रक्रिया लगा लेना चाहिए अर्थात् संतान और संतानी ये परस्परमें भेदरूप हैं या अभेदरूप हैं या उभयरूप हैं या अनुभयरूप हैं ? यदि संतान संतानीसे अभिन्न है, अनन्त है तो एक ही चीज रही। वहाँ दो बातें न रह सकेंगी। यों भी संतान संतानीमें कुछ धर्मकी बात लगाना अनभिलाप्य हो गया। यदि संतान संतानी भिन्न हैं तो जब सम्बन्ध ही नहीं उनका कुछ है तो वहाँ यह न कहा जासकेगा कि यह संतान इन संतानियोंके हैं, यों भी अनभिलाप्य है। उभयपक्षमें दोनों पक्षोंमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिया गया दोष आता है। अनुभयपक्षमें वह निःस्वभाव बन जाता है। तो यों इन चार कक्षाओंमें वस्तु अनभिलाप्य है। अतः उसके सम्बन्धमें विकल्प न उठाना चाहिए कि संतान संतानियोंसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? इस प्रकार क्षणिकवादियोंका यह सिद्धान्त बताया गया है। अब आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसी चार कोटियोंमें विकल्पकी वचनागोचरता मानने वाले दार्शनिकोंके प्रति जो इस अभिप्रायमें दूषण आता है उसे कहते है :

अवक्तव्यचतुस्कोटिविकल्पोऽपि न कथ्यताम्।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥४६॥

चार कोटियोंसे अवक्तव्य कहने वाले दार्शनिकोंके यहाँ अवक्तव्यत्व की चतुष्कोटिक विकल्पोंकी वचनागोचरता का प्रसंग—जिन दार्शनिकोंका यह अभिप्राय है कि चार कोटियोंमें विकल्प वचनोंके अगोचर होते हैं उन दार्शनिकोंका अवक्तव्यकी चार कोटियोंका विकल्प भी न कहना चाहिए। वहां भी यह कहा जा सकेगा कि वस्तुमें जो अवक्तव्यता मान रहे हो सो वह वस्तुसे भिन्न है या अभिन्न है या उभय है या अनुभय है ? चार कोटियोंमें वह अवक्तव्यता भी सिद्ध न होगी तब अवक्तव्य धर्म सम्बन्धी चार प्रकारके विकल्प भी न कहना चाहिए कि चार कोटियोंमें वस्तु अनभिलाप्य है। स्वलक्षण सत् है यह भी अवक्तव्य है। स्वलक्षण असत् है यह अवक्तव्य है। स्वलक्षण उभय है यह अवक्तव्य है। स्वलक्षण अनुभय है यह अवक्तव्य है। इस प्रकार अवक्तव्यको चार प्रकार बतानेकी बात भी तो नहीं कही जा सकती। दूसरा यह भी दूषण आता है कि जो सर्व धर्मोंसे रहित है वह अवस्तु ही कहलायेगी अर्थात् वस्तु नहीं हो सकती। इसी प्रकार जिसमें कोई विशेष्य अथवा विशेषणभाव नहीं है वह भी वस्तु नहीं हो सकती। वस्तुको सर्वथा अनभिलाप्य कहनेपर तो अनभिलाप्यकी चार कोटियोंमें नहीं जा कही सकती हैं। यदि अनभिलाप्यकी चार कोटियाँ बनायी जाती हैं तो इससे कथंचित् अभिलाप्यपना सिद्ध हो जाता है, अवक्तव्य है। इस रूपमें भी वस्तु कुछ कहा ही तो गया। इस कारणसे इन क्षणिकवादी दार्शनिकोंको अवक्तव्यकी चार कोटियों वाला विकल्प भी न कहना चाहिए और जब अवक्तव्यकी कोटियाँ भी नहीं कही जा सकती तो शिष्योंको समझाने और आश्वासन देनेकी बात फिर बन नहीं सकती।

अनेकान्त प्रयोग बिना सवविकल्पातीतके वस्तुत्वकी अनुपपत्ति—और भी सुनो ! अवक्तव्यता चार कोटियोंसे मान लेनेपर अब उसमें कोई विकल्प ही नहीं उठाया जा सकेगा। वस्तु अव्यक्त है यह भी नहीं कहा जा सकता। तब फिर जो सब विकल्पोंसे अतीत हैं, जिनमें अवक्तव्यता सम्बन्धी कोई विकल्प नहीं पड़ा है या अवक्तव्यता वाला भी विकल्प नहीं पड़ा है तो सब विकल्पोंसे अतीत कुछ भी वस्तु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं हो सकती। हाँ, अनेकान्त प्रयोगके बिना अवक्तव्य भी वस्तु नहीं बनता। अनेकान्त प्रयोगसे वस्तुमें वक्तव्यता और अवक्तव्यता सभी कुछ सिद्ध की जा सकती है। अनेकान्तात्मक जो वस्तु है वह तो एक जात्यंतर रूप है, क्योंकि सर्वथा एकांतके विकल्पसे अतीत है, उसे किसी भी एकान्तरूप न कहा जा सकेगा। वह तो एक विलक्षण ही तत्त्व प्रतीत होता है और यह भी कहना कि वस्तु सब विकल्पोंसे अतीत हैं, अनेकान्तके प्रयोग बिना वह वस्तु यों नहीं कही जा सकती कि जो कुछ भी कहा जायगा वह या तो विशेषण बनेगा या विशेष्य ! एकान्त पक्षमें कहा गया जो सब विकल्पातीत है वह विशेषण नहीं बनता इस कारण अवस्तु होगा। जैसे कि आकाश पुष्प ! आकाशपुष्प असत् है, वह किसीका विशेषण नहीं बनता। जो सर्वथा ही असत् है, द्रव्यरूपसे भी असत् है और पर्यायरूपसे भी असत् है, ऐसा कुछ भी अनभिलाप्य है या अवस्तु है, इस विशेषणको भी स्वीकार नहीं कर सकता, इस कारण वह भी अविशेष्य बन जाता है। जो न विशेष्य है, न विशेषण है, ऐसी कुछ भी वस्तु प्रत्यक्ष ज्ञानमें नहीं प्रतिभासित होती है। जो कुछ भी प्रत्यक्ष ज्ञानमें जाना जाता वह या तो विशेष्यरूप है अथवा विशेषण रूप है। स्वसम्वेदन ज्ञान भी विशेष्यरूप अथवा विशेषण रूप है, इस प्रतीतिके साथ ही जाना जाता है। स्वसम्वेदन ज्ञान विशेष्य विशेषण रहित प्रतिभासित हो सो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्वसम्वेदन हो रहा है उस समय जो स्वसम्वेदनका परिज्ञान चल रहा है कि यह सत् है, यों जब सत्व विशेषण से विशिष्ट होगया यों विशेष्य बनकर ही वह स्वसम्वेदन परिचयमें आता है।

अविशेष्य अविशेषणमें वस्तुत्वकी असिद्धि होनेसे सर्वथा अनभिलाप्यत्वके सिद्धान्तकी अशक्तता—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि स्वसम्वेदन हो, अब उसके बाद जो विकल्प बनता है कि यह स्वका सम्वेदन है तो बादके विकल्प ज्ञानमें ही विशेषण विशेष्य भाव आगा, पर जिस समय स्वसम्वेदन ज्ञान हो रहा है उस प्रत्यक्षज्ञानके समयमें विशेषण विशेष्य भाव नहीं है अर्थात् स्वरूपमें उस स्वसंवेदन ज्ञानके विशेषण विशेष्य भाव नहीं, किंतु स्वसम्वेदन ज्ञान होनेके पश्चात् जो उसके सम्बन्धमें विकल्प ज्ञान चलता है उस सविकल्प ज्ञानमें ही यह प्रतिभास होता है कि यह विशेषण रूप है अथवा विशेष्यरूप है। तो स्वरूपमें तो वह विशेषण विशेष्यभावसे रहित हो गया। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि वह स्वसम्वेदन ज्ञान विशेष्य विशेषण भावसे रहित है, इस प्रकारका प्रतिषेध क्या स्वत: हो ही जाता है ? सो यह माना ही है कि हाँ, स्वसम्वेदन विशेषण विशेष्य भावसे रहित है, ऐसा स्वयं प्रतिभात होता है। तो ऐसा माननेपर उस सम्वेदनमें विशेषण विशेष्य भाव सिद्ध हो गया। वह इस प्रकार सिद्ध हो गया कि अभी हाँ तो कह दिया ना, कि वह सम्वेदन अविशेष्य विशेषण है। तो सम्वेदन हो गया विशेष्य और वह अविशेष्य विशेषण है यह हो गया विशेषण। जैसे यह कमल नीला है, यहाँ कमल तो हो गया विशेष्य और नीला है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह हो गया विशेषण । कमल कैसा है ? इस प्रश्नके उत्तरमें जो बात कहनेमें आई वह विशेषण बन गया । इसी प्रकार जब यह कहा गया कि स्वसम्वेदन विशेष्य विशेषण रहित है तो स्वसम्वेदन यह तो होगया विशेष्य याने जिसके सम्बन्धमें कुछ बात बताई है वह कहलाता है विशेष्य और यह स्वसम्वेदन कैसा है ? इस प्रश्नके उत्तरमें यह जो कहा गया कि विशेष्य विशेषण रहित है, तो यही हो गया विशेषण । तो स्वसंवेदन अविशेष्य विशेषण है, ऐसा कहनेमें विशेष्य विशेषण भाव आ ही गया । जो सर्वथा ही असत् हो उस असत्में विशेषण विशेष्यपनेका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता । स्वसम्वेदन है वह सत् है और वह विशेषण विशेष्य भावसे रहित है । तो इससे ही सिद्ध हो गया कि वस्तु विशेषण विशेष्य भाव वाला ही हो सकता है । कुछ भी यदि असत् है तो उसमें न विशेषण विशेष्यका विधान बनता है और न विशेषण विशेषत्वका प्रतिषेध बनता है । अब इसी बातको समन्तभद्राचार्यदेव स्वयं कारिकामें कहते हैं कि प्रतिषेध कथंचित् सत्के ही सम्भव हो सकता है ।

द्रव्याद्यान्तरभावेन निषेधः संज्ञिनः सतः ।
असद्भेदो न भावस्तु स्थानं विधिनिषेधयोः ॥४७॥

सत् पदार्थमें ही द्रव्याद्यन्तरभावसे निषेधकी संभवता—संज्ञावान सत् का निषेध द्रव्यान्तरके भावसे होता है । अर्थात् परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावसे वस्तु नहीं है इस प्रकारका निषेध कथंचित् सत् पदार्थके ही बनता है । और, वह निषेध अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे बनता है । परन्तु स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे नहीं बनता । अथवा यों कह लीजिए कि असत्का प्रतिषेध स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं किया जाता । वह अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे किया जाता है । जो पदार्थ सर्वथा असत् है ऐसा कुछ भी विधि अथवा निषेधका स्थान नहीं हो सकता । जो किसी भी प्रकार सत् नहीं है, उसकी न तो विधि होती है और न उसका निषेध हो सकता है । अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे संज्ञी सत्का प्रतिषेध किया जाता है । अर्थात् जिस किसी भी संज्ञासे प्रयुक्त किया जाय ऐसे सत् का जो प्रतिषेध होता है वह अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होता है । किन्तु असत् का स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे प्रतिषेध नहीं किया जाता, क्योंकि जो सर्वथा असत् है वह विधि और प्रतिषेधका विषयभूत भी नहीं है । जो किसी भी रूपमें नहीं है उसका कुछ ख्याल ही नहीं आ सकता, फिर उसकी विधि क्या की जाय और निषेध क्या किया जाय ? वस्तु अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे असत् है । यदि अन्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे असत् हो जाय तब फिर विधि नाम किसका रहेगा और जब उसकी विधि सम्भव नहीं होती तो प्रतिषेध किसका किया जायगा ? क्योंकि प्रतिषेध कथंचित् विधि पूर्वक ही होता है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनेकान्तप्रक्रियामें ही अभिलाप्यत्व व अनभिलाप्यत्वकी सिद्धकी तरह विशेष्यविशेषणभाव व अविशेष्यविशेषणभावकी सिद्धि—जो वस्तु सद्-भावरूप है उस भावरूप वस्तुका ही किसी अन्य प्रकारका निषेध किया जा सकेगा। इस कारणसे जो कथंचित् अभिलाप्य है ऐसे सत्का प्रतिषेध होनेसे ही अनभिलाप्यपना बन सकता है। अर्थात् वस्तु स्व, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे अभिलाप्य है वही पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे न कहा जा सकेगा अतएव वस्तुमें अभिलाप्यपना और अनभिलाप्यपना अनेकान्तकी विधिमें ही सम्भव । जो कथंचित् अभिलाप्य है वही अनभिलाप्य कहा जा सकेगा। इसी प्रकार जो कथंचित् विशेषण विशेष्यभावरूप है वह ही अविशेष्य विशेषण कहा जा सकेगा। जो सर्वथा विशेषण विशेष्य भावसे रहित हो उसको इन शब्दोंसे भी न कहा जा सकेगा कि वह सवथा विशेष्य विशेषण भावसे रहित है। इस प्रकार कुछ भी एकांतसे न तो अनभिलाप्य मानना चाहिए किन्तु जो अनभिलाप्य है वह ही कथंचित् अनभिलाप्य है। इस प्रकार जो भी विशेष्य विशेषण भाव वाला है वह ही विशेष्य विशेषण भाव रहित सिद्ध किया जा सकता है यह नीला कमल ही है, अन्य नहीं है। तो कुछ बुद्धिमें आये तब ही तो निषेध बन सकेगा। अथवा यह कमल नीला ही है, अन्य प्रकारका नहीं है इस तरह कुछ भी ख्यालमें आये उसमें ही विशेष्य विशेषण भावका निषेध बन सकता है। इस प्रकार इन क्षणिकवादी दार्शनिकोंको यह बात स्वीकार कर लेना चाहिए कि एकान्तसे कुछ भी न तो अनभिलाप्य है और न विशेष्य विशेषण भावसे रहित है। जो अभिलाप्य होता है नहीं किसी अपेक्षासे अनभिलाप्य हो जाता है। इसी तरह जो विशेषण विशेष्यरूप है वही किसी अपेक्षासे अविशेषण विशेष्यरूप हो जाता है।

सर्वथा अनिर्देश्यत्व व सर्वथा कल्पनापोढत्वकी तरह सर्वथा अनभि-लाप्यत्वकी भी असिद्धि—जैसे कि क्षणिकवादियोंने माना है कि स्वलक्षण अनि-र्देश्य है तो स्वलक्षण अपने असाधारण स्वरूपसे अनिर्देश्य है, पर अनिर्देश्य है इस शब्दके द्वारा तो अनिर्देश्य नहीं है। उस स्वलक्षणको अनिर्देश्य है इस शब्दके द्वारा तो निर्दिष्ट किया ही गया है। स्वलक्षण असाधारण स्वरूपसे अनिर्देश्य है, किन्तु वह अनिर्देश्य है इस शब्दके द्वारा अनिर्देश्य नही है। क्योंकि वह अनिर्देश्य है इस शब्दके द्वारा यह उसका निर्देश किया ही गया है। जब उन्होंने आगममें कहा है कि स्वलक्षण अनिर्देश्य है तो इस शब्दके द्वारा कुछ भी तो बताया गया है यदि अनिर्देश्य है इस शब्दके द्वारा भी उसका निर्देश न हो सके तो इसमें स्ववचन विरोध होगा अर्थात् कहे तो जा रहे हैं शब्दोंसे कि वह अनिर्देश्य है और मानते यह हैं कि वह शब्दोंके द्वारा नहीं बताया जा सकता। इसमें तो वचन विरोध है। इसी प्रकार जो क्षणिकवादियोंने कहा है कि प्रत्यक्ष कल्पनापोढ है अर्थात् कल्पनासे परे है तो उस प्रत्यक्षको स्वरूपसे ही तो कल्पनापोढ कह रहे हो। पर कल्पनापोढ है इस प्रकारकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कल्पनाकी अपेक्षासे तो कल्पनासे परे नहीं है। कल्पना तो की ही गई है कि प्रत्यक्ष कल्पनासे परे है। तो इस कल्पनामें तो वह प्रत्यक्ष आ ही गया। तो प्रत्यक्ष कल्पनापोढ़ होकर भी किसी अपेक्षासे कल्पनापोढ़ नहीं है, अन्यथा अर्थात् कल्पनाकी अपेक्षा से भी यदि वह कल्पनासे परे है तो कल्पनासे परे होनेके कारण उसमें कल्पना फिर नहीं की जा सकती है। फिर प्रत्यक्षके बारेमें इतनी भी कल्पना न बन सकेगी कि वह कल्पनासे परे है, क्योंकि जो समस्त विकल्प वचनोंके गोचर नहीं है अर्थात् न कल्पनामें आ सकता है, न वचनोंमें आ सकता है तो वह तो निःस्वभाव हो गया। अवस्तु ही बन गई। तो स्वलक्षणको वचनोंसे परे सर्वथा नहीं कह सकते। अर्थात् सर्वथा अनिर्देश्य नहीं मान सकते। इसी प्रकार प्रत्यक्षको सर्वथा कल्पनासे परे नहीं कह सकते। तो जैसे स्वलक्षण अनिर्देश्य भी है, निर्देश्य भी है तथा प्रत्यक्ष कल्पनासे परे भी है और कल्पनासे परे नहीं भी है। यहाँ विरोध नहीं पड़ता। इस ही तरह स्याद्वादियोंके सिद्धान्तमें जो वस्तु अभिलाप्य है वही अनभिलाप्य है, इसमें भी कोई विरोध नहीं आता तथा जो वस्तु विशेषण विशेष्यरूप है वही विशेषणविशेष्यसे रहित है इसमें भी कोई विरोध नहीं आता!

एक वस्तुमें अभिलाप्यत्व व अनभिलाप्यत्वका अविरोध—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! एक ही वस्तुमें अभिलाप्यपना और अनभिलाप्यपना दोनो कहना यह तो विरुद्ध जचता है क्योंकि अभिलाप्य है भावस्वरूप, अनभिलाप्य है अभावस्वरूप, तो भावस्वरूप और अभावस्वरूपमें शब्दभेदसे भी भेद पड़ा हुआ है। अभाव शब्द जिस तत्वको बताता है उसे अभाव शब्दसे ही कह सकेंगे। भाव शब्द जिस तत्वको बताता है उसे भाव शब्द ही बता सकेगा। तो वाचक शब्द होनेसे जब अभिलाप्य और अनभिलाप्यमें भेद पड़ा हुआ है तो विरोध कैसे न होगा? इस शङ्का के उत्तरमें कहते हैं कि देखिये! अभाव अनभिलाप्य है, इस शब्दमें भी भाव ही कहा गया है। जो वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र, काल, भावसे वक्तव्य है उस वस्तुका सत्त्व पर द्रव्यसे क्षेत्र, काल, भावसे नहीं है, अतः पर चतुष्टयसे अनभिलाप्य है। ये सब दोष तो एकान्त पक्षमें ही घटित हुआ करते हैं। पररूपसे अभाव कहा जाता है और स्वरूपसे भाव कहा जाता है। जैसे कि अभाव है, इस शब्दके द्वारा कोई भाव ही कहा गया है अर्थात् अभावने भावान्तरको बताया है और अनभिलाप्य है इस शब्दने अन्य अभिलाप्यको बताया है। उसी प्रकार भाव अभिलाप्य है इस शब्दके द्वारा भावान्तरका भाव और अनभिलाप्यान्तरका अभाव कहा गया है। इस ही तरहसे ज्ञानमें वस्तुकी प्रतीति होती है। जैसे अघट कहा तो घट नहीं है, तो अन्य कुछ ही वस्तु तो बताया गया। जैसे कपड़ेको कहा कि यह अघट है, घट नहीं है तो किसी भावान्तरको नजर में रखकर ही अभाव कहा गया है। और, जब कहा कि यह वस्तु अनभिलाप्य है तो जिस दृष्टिसे वह वस्तु सत् नहीं है उस दृष्टिसे वह अनभिलाप्य है। परन्तु स्वरूपसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो अभिलाप्य ही सिद्ध होगा। जैसे कहा गया कि यह भाव है, सत् है तो इसमें भावान्तरका अभाव बताया गया। जैसे यह घट है, ऐसा कहनेमें घटान्तरसे पटादिक का अभाव बताया गया है और जब कहा गया कि यह वक्तव्य है तो इस शब्दके द्वारा वक्तव्यान्तरका अभाव कहा गया है अर्थात् अवक्तव्यपनेका अभाव है।

अभाव शब्दोंसे अथवा भाव शब्दोंसे अभाव व भावका ही एकान्तसे अभिधान होना माननेपर शाब्दिक व्यवहारका विरोध—अभाव शब्दोंके द्वारा यदि एकान्तसे अभाव ही कहा जाय वहाँ भावान्तर नजरमें न आये और भाव शब्दके द्वारा भाव ही एकान्तसे कहा जाय वहाँ भावान्तरका अभाव नजरमें न आये तो इन शब्दोंके द्वारा भाव और अभावका एकान्तसे कथन करनेमें शाब्दिक व्यवहारका विरोध आता है, वहाँ फिर कोई व्यवहार बन ही नहीं सकता है। क्योंकि जितने शाब्दिक व्यवहार होते हैं उनकी उपलब्धि तब ही है जब कि वहाँ प्रधान भावसे विधि समझी गई हो और गौण भावसे निषेध समझा गया हो। जैसे जब कहा गया कि घट है, तो इस शब्दके द्वारा दो प्रकारकी प्रतीतियाँ हो ही जाती हैं। याने स्वरूपतः जो घट है उसका सद्भाव तो प्रधानरूपसे समझा गया और घटके सिवाय अन्य पदार्थों का अभाव है, यह बात गौणरूपसे समझी गई। यद्यपि ये दोनों विधि निषेध एक समान बल रखते हैं फिर भी शब्दने जिस बातको कहा वह तो प्रधान बन जाता है और उसका सहभावी अन्य तात्पर्य गौण कहलाता है। तो प्रधान भावसे और गौण भावसे विधि एवं निषेध पाये जानेसे ही प्रवृत्ति और निवृत्तिमें विवाद नहीं रहता। सम्वाद रहता है और प्रतिपत्ता उस तरहकी प्रवृत्ति और निवृत्ति कर लेता है। जैसे किसी पुरुषने कहा कि घट लाओ! तो सुनने वालेने वहाँ दोनों बातें समझ रखी हैं, घटका सद्भाव और अघटका अभाव, तभी तो वह घट लाता है अघट नहीं लाता। तो ऐसी प्रवृत्ति निवृत्ति तब ही बन सकती जब कि उस पुरुषके हृदयमें विधि और निषेध दोनों प्रकारसे वस्तुका बोध होता है अन्यथा अर्थात् विधि और निषेध दोनोंका बोध न होता हो तब उस पुरुषको वहाँ विसम्वाद बना रहेगा। जैसे घट शब्द सुनकर अघटका अभाव न जाना हो तो अन्य चीज भी ला सकते हैं या विवादमें पड़ सकते हैं क्या करूं? तो शाब्दिक व्यवहार तब ही बनता है जब कि प्रधान और गौण भावसे जब विधिपरक और निषेधपरक भाव समझा गया हो। इसी कारण समन्तभद्राचार्यने जो कारिकामें यह कहा है कि सर्वथा असत् तो विधि और निषेधका आधार भी नहीं बन सकता, वह ठीक ही कहा है। जिस पदार्थमें कथंचित् सद्विशेष हो, गुण पर्याय आदिक कोई सत्त्वके विशेष पाये जायें अर्थात् जो पदार्थस्वरूप ही सत् है उस ही पदार्थमें विधि और निषेधका आधार बन सकता है अन्यका निषेध और विवक्षितकी विधि यह बात सद्भूत पदार्थमें ही सम्भव है। तब यहाँ यह निष्कर्ष निकाल लीजिए कि अन्य दार्शनिकोंके द्वारा माना गया ही तत्त्व सर्वथा अनभिलाप्य सिद्ध होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब इस ही भावको समंतभद्राचार्यदेव इस कारिकामें बताते हैं।

अवस्त्वनभिलाप्यं स्यात्सर्वान्तैः परिवर्जितम् ।
वस्त्वेवावस्तुतां याति प्रक्रियाया विपर्ययात् ॥ ४८ ॥

प्रक्रियाके विपर्ययसे वस्तुमें अवस्तुत्व ऐसे अवस्तुका अनभिलाप्यत्व– जो सब धर्मोंसे रहित है वह अवस्तु है और वही अनभिलाप्य होती है अर्थात् शब्दों द्वारा नहीं कही जा सकती है और इस तथ्यमें आधार यह है कि प्रक्रियाके विपरीत प्रयोगसे वस्तु ही अवस्तुपनेको प्राप्त हो जाती है। जैसे घट घटकी अपेक्षासे है अब इसे विपरीतरूपमें प्रयोग कीजिए कि घट पट रूपकी अपेक्षासे है ? तो उत्तर मिलेगा कि नहीं है, अवस्तु है, अघट है, जो समस्त धर्मोंसे रहित है, जहाँ धर्मोंका स्वभाव ही कुछ नहीं है वह तो अवस्तु ही कहलायेगा, क्योंकि जो सब धर्मोंसे रहित है. जिसमें किसी प्रकारका स्वभाव नहीं है वह तो किसी भी प्रमाणका विषयभूत नहीं हो सकता और यों सर्व धर्मोंसे रहित निःस्वभाव ही कुछ अनभिलाप्य कहा जा सकता है, किंतु वस्तु सर्वथा अनभिलाप्य नहीं हो सकती है। वह तो प्रमाणके द्वारा प्रसिद्ध है। यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो सब धर्मोंसे रहित है वह तो निःस्वभाव बन गया। ऐसी वस्तु को तो स्याद्वादियोंने माना ही नहीं है। तो जो किसी प्रकार माना ही नहीं गया ऐसे उस अवस्तुको अनभिलाप्य कह देना तो अयुक्त है, जैसे कि अभी स्वयं ही कहा है कि जो सब धर्मोंसे रहित है वह अनभिलाप्य है। तो सब धर्मोंसे रहितको निःस्वभावको अभिलाप्य कहना भी युक्त नहीं बताया और अनभिलाप्य कहना भी युक्त नहीं बताया जो सर्वथा असत् है वह वचनों द्वारा कहा जाय यह भी नहीं बताया और शब्दों द्वारा न कहा जाय यह भी नहीं बताया। तो उसे अनभिलाप्य कैसे कह देंगे ? इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि अवस्तु अनभिलाप्य है, यह बात भी दूसरेकी कल्पना मात्रसे कही जाती है अर्थात् दूसरेने कल्पना की है कि सब धर्मोंसे रहित है अवस्तु और उस ही चीजको अवस्तु कहकर फिर अनभिलाप्य कहा जाता है, किन्तु प्रमाणकी सामर्थ्यसे उसे अवस्तु आदिक कुछ नहीं कहा गया, क्योंकि जो कुछ है ही नहीं उसके बारेमें न विधि बन सकती है और न निषेध बन सकता है। वह किसी न किसी रूपमें है तो उसके सम्बन्धमें कुछ विशेषण दिया जा सकेगा। यह वक्तव्य है अथवा अवक्तव्य है ? या भिन्न है, अभिन्न है ? कुछ ही विशेषण वहाँ ही युक्त हो सकता है जहाँ सत्त्व हो। किसी भी वस्तु में अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा वाली प्रक्रियाओंसे तो वस्तु कहेंगे, पर उस प्रक्रियासे उल्टी प्रक्रिया लगा दी जाय कि कोई वस्तु पर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे, तो वहाँ अवस्तुपना ही कहा जायगा। जैसे कि स्वरूपसिद्ध घटका घटरूपसे तो घटपना है पर घटान्तर रूपसे अघटपना है। यों ही किसी भी वस्तुको अन्य वस्तुरूपसे अवस्तु कहा जा सकता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाक्यताको प्राप्त अभाववाचक शब्दोंके द्वारा भी भावका अभिधान होनेसे एक पदार्थमें वस्तुत्व व अवस्तुत्वकी सिद्धिका अविरोध—शङ्काकार कहता है कि यह तो परस्पर विरुद्ध बात कही गई कि वस्तु ही वस्त्वन्तर रूपसे अवस्तु कहलाने लगती है। यह बात परस्पर विरुद्ध यों है कि वस्तुपना और अवस्तुपना ये दोनों परस्पर प्रतिपक्षी हैं और एक दूसरेका परिहार करके ही ठहर सकते हैं। जहाँ वस्तुत्व है वहाँ अवस्तुत्व नहीं रह सकता, जहाँ अवस्तुत्व है वहाँ वस्तुत्व नहीं रह सकता ! इस शङ्काके समाधानमें कहते है कि देखिये ! भावके व्यतिरेकको कहने वाले शब्दोंके द्वारा भी अर्थात् अभाव वाचक शब्दोंके द्वारा भी जो कि वाक्यपनेको प्राप्त हुए हैं उनके द्वारा भाव ही कहा जाता है याने अभाववाची जितने भी शब्द हैं अनुपलब्ध होना, परिहार करना, अभाव करना आदिक उन शब्दोंके द्वारा कोई भाव ही कहा गया है इस कारण एक वस्तुमें वस्तुत्व व अवस्तुत्व कहनेमें किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है। जैसे कि किसीने कहा कि अब्राह्मणको लावो ! तो इस वाक्य द्वारा यही तो कहा गया कि ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषको लावो ! तो ब्राह्मण पदार्थके अभावको कहने वाले इन शब्दोंने जो कि वाक्यरूपमें प्रयुक्त किए गए हैं उन अभाववाची शब्दोंने क्षत्रिय आदिक भावोंको ही कहा है। तो इससे सिद्ध है कि अभाववाची शब्दोंके द्वारा भी भावका ही अभिधान होता है। तो इसी प्रकार जब यह कहा गया कि अवस्तु अनभिलाप्य है तो वाक्यपनेको प्राप्त इन शब्दोंके द्वारा वस्तुत्वके शून्यपनेको कहा तो गया है प्रकटरूपसे, किंतु उन शब्दोंके द्वारा वस्त्वान्तर ही कहा गया है। इस कारण इस बातमें कोई विरोध नहीं है कि जो वस्तु है वही किसी अपेक्षासे अवस्तु प्रतीत होती है।

अवस्तुका अनभिलाप्यत्व व अभिलाप्यका वस्तुत्व—जब वस्तुत्व और अवस्तुत्वमें अविरोध बन गया तब यह कहना बिल्कुल युक्त है कि जो अवस्तु है वह अनभिलाप्य है, जैसे कि न कुछ चीज (शून्य) अनभिलाप्य होता है। तो यों ही जो अवस्तु है वह अनभिलाप्य है और जो अनभिलाप्य है अर्थात् वचनोंके द्वारा कहा जा सकने योग्य है वह वस्तु ही है। जैसे आकाशपुष्पका अभाव। आकाशपुष्पका अभाव वस्तु है क्योंकि अभिलाप्य होनेसे। जो अभिलाप्य होता है वह वस्तु होता है। तो यहाँ भी जो कुछ कहा जायगा वह सब वस्तु है। तो अभावमें किसीके वस्तुत्वपनेकी व्यवस्था बनती है। कोई भी पुरुष किसी भी बातका अभाव बतायगा तो उसकी नजरमें किसी पदार्थका अस्तित्व पड़ा है तब वह अभावका प्रयोग कर सकता है। यहाँ अनुमान प्रयोग किया गया है कि स्याद्वादियोंके द्वारा माना गया अभाव वस्तुरूप होता है, क्योंकि अभिलाप्य होनेसे और इसमें उदाहरण दिया गया है आकाशपुष्पका अभाव। तो यह उदाहरण साध्यविकल नहीं है अर्थात् आकाशपुष्पका अभाव यह जब अभिलाप्य है तो वस्तु है। पुष्पसे शून्य जो आकाश है वही उसके द्वारा कहा गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आकाशमें पुष्पका न रहना आकाशका निजी स्वरूप है। तो पुष्पसे रहित जो आकाश है, वही कहलाता है आकाशमें पुष्पका अभाव। लोकमें सभी पुरुषोंको यह बात भली प्रकार प्रतीत होती है कि दूसरेकी केवलता रहना ही अन्य दूसरेकी विकलता कहलाती है। जैसे चौकीपर कूड़ा जमा हुआ हो तो कहते हैं कि यह चौकी मलिन है। अब वह शुद्ध कैसे हो? तो कूडेके हट जानेका ही नाम चौकीकी शुद्धता है। तो चौकीकी केवलता रह जाना यही तो शुद्धि है। तो चाहे चौकी केवल रह गई, यह कहा जाय और चाहे कूडेका परिहार हो गया यह कहा जाय, दोनोंका भाव एक है क्योंकि पदार्थमें भाव और अभावकी व्यवस्था स्वभाव और परभावसे की जाती है अर्थात् पदार्थ स्वभावसे सद्भावरूप है और परभावसे अभावरूप है। तो अभाव भाव स्वभाव ही कहलाने लगता है।

अपेक्षणीयनिमितभेदसे भाव अभावकी उचित उक्ति होनेके कारण भाव अभावके अटपट प्रयोगोंका निराकरण—देखिये वस्तुमें सर्वथा भाव ही हो यह नहीं कहा जा सकता। यदि वस्तुमें सर्वथा सद्भाव ही मान लिया जाय तो इसके मायने यह होगा कि जैसे पदार्थ अपने स्वरूपसे सद्भावरूप है इसी प्रकार पररूपसे भी सद्भावरूप हो बैठेगा। अतः सर्वथा ही यह न कहा जा सकेगा कि वस्तुमें भाव ही भाव है। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता कि वस्तुमें सर्वथा अभाव ही अभाव है, क्योंकि ऐसा कहनेपर यह सिद्ध हो बैठेगा कि जैसे वस्तु पररूपसे अभावरूप है उसी प्रकार स्वरूपसे भी अभावरूप हो जायगा। तो यों भी नहीं कहा जा सकता वस्तुका सर्वथा अभाव ही है। तीसरी बात यह भी सुनो कि पदार्थके सम्बन्धमें यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो स्वरूपसे भाव है वही पररूपसे अभाव है याने स्वरूपसे सद्भाव रूप जो स्वलक्षण है वही पररूपसे अभाव है सो बात नहीं है। और पररूपसे जो अभाव है वही स्वरूपसे भाव हो यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वहां अपेक्षणीय निमित्तका भेद है। निमित्तके भेदसे नैमित्तिकमें भी भेद होता है। यद्यपि यह बात तथ्यकी है कि पदार्थ अपने स्वरूपसे है तो वही पदार्थ परस्परसे नहीं है, सो पदार्थमें अपेक्षाभेद करके ही तो यह कहा जाता है, परंतु भावके साथ अपेक्षा लगाकर और उस ही अपेक्षासे जो सद्भाव है उस हीको अन्य अपेक्षासे अभावरूप कहना यह बात नहीं बनती। इसमें अपेक्षाकृत भेद है। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्वरूप निमित्तकी अपेक्षा करके तो सभी अर्थ भावके ज्ञानको उत्पन्न कराते हैं और परद्रव्य, क्षेत्र, काल स्वरूपकी अपेक्षा लेकर अभावका ज्ञान सभी पदार्थ कराते हैं। तो यहां यह समझना चाहिये कि पदार्थ स्वरूपसे भावस्वरूप है और पररूपसे अभाव स्वरूप है वस्तु सर्वथा भावस्वरूप नहीं। वस्तु सर्वथा अभाव स्वरूप नहीं। और जो स्वरूपसे भाव है वही पररूपसे अभाव नही कहलाता। जो पररूपसे अभाव है वही स्वरूपसे भाव नहीं कहलाता। यद्यपि पदार्थमें दोनों बातें हैं कि स्वरूपसे सद्भाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पररूपसे अभाव है। पर इस भाव और अभावका पदार्थमें आवास है, स्वरूपके भावमें पररूपका अभाव नहीं। पदार्थमें अवश्य भाव और अभाव दोनोंकी व्यवस्था बनती है।

एकत्वद्वित्वादिसंख्याकी तरह एक वस्तुमें भाव व अभावके भेदकी व्यवस्था— जैसे कि एकत्वद्वित्व आदिक संख्याओंका संख्यावानसे भेद व्यवस्थित होता है। जैसे कि एक द्रव्यसे द्रव्यान्तरकी अपेक्षा करके ही द्वित्वादिक संख्या प्रकट होती है। तो अब देखिये कि द्रव्यमें द्रव्यान्तरकी दृष्टिसे तो द्वित्व संख्या बनी। अर्थात् ये केले दो हैं जैसे यह कहा तो दो संख्या तब ही तो जान सकेंगे जब अनेक पर दृष्टि गई दो केलोंपर दृष्टि जायगी। तब वहां दो संख्या बन सकेगी, किन्तु एकत्व संख्या केवल अपने ही द्रव्यमात्रकी अपेक्षासे बनती है। जैसे कहा एक केला तो इस एकत्व संख्याको जाननेके लिए अन्य पदार्थोंपर नजर न करनी पड़ेगी, जैसे कि दो तीन चार आदिक संख्याओंको समझनेके लिए अन्य द्रव्योंपर नजर करना होता है। तो अब यहाँ यह विचारिये कि द्वित्व संख्या और एकत्व संख्या ये एक द्रव्यमें अभिन्न तो नहीं मालूम होती, इसकी दृष्टि भिन्न है। लक्ष्यमें आयी हुई बात भिन्न है। तो एकत्व संख्यासे द्वित्वादिक संख्यायें अभिन्न नही प्रतीत होती। एकत्व संख्याका स्वरूप जुदा है, द्वित्व संख्याका स्वरूप जुदा है और वे दोनों ही संख्यायें एकत्व और द्वित्वादिक ये दोनों ही संख्यापनसे भिन्न ही हों यह भी बात सिद्ध नहीं होती। याने पदार्थोंको गिना है जब कि यह पदार्थ एक है। तो क्या एक संख्या जुदी हो गयी। और वह पदार्थ जिसको एक कहा जा रहा है वह जुदा हो गया। जुदा नहीं कहा जा सकता। यदि एकत्व द्वित्वादिक संख्यायें संख्यावान पदार्थसे भिन्न ही मान ली जायें तो अब पदार्थ संख्येय न रहा, असंख्येय बना अर्थात् संख्यासे युक्त न हो सका कि यह एक है या दो चार है। इस कारण यह भी नहीं कह सकते कि एकत्व द्वित्वादिक संख्यायें संख्यावानसे भिन्न ही हैं। कोई कहे कि संख्या समवायसे पदार्थकी संख्येयता सिद्ध हो जायगी। याने जैसे वे केला पड़े हैं, उनमें संख्याका समवाय कर दिया तो वहां गिनती बन गई कि ये केला दो चार हैं सो यों संख्याके समवायसे भी संख्येयपना सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि समवायका संख्या और संख्यावानमें कोई संबंध नहीं है। अब तो इन विशेषवादियोंके यहां या निरंशवादियोंके यहां तो संख्या जुदे पदार्थ हैं। संख्या वाले पदार्थ जुदे हैं और समवाय जुदे हैं तो संख्या तो एक गुण हो गया और संख्यावान वह द्रव्यादिक हो गया। और समवाय एक जुदा ही पदार्थ है। तो अब समवायीमें संख्या और संख्यावानमें सम्बन्ध ही कैसे बताया जा सकता है, क्योंकि समवायका वहां सम्बन्ध नहीं है। यदि समवायका अपने समवायीके साथ सम्बन्धकी कल्पना की जाय याने यहां समवायी है दो संख्या और संख्यावान। और उनमें समवाय जोड़ा जा रहा है, तो यों अपने समवायीमें समवायके सम्बन्धकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कल्पना की जाय याने अन्य समवायसे कर दिया जाय तो इसमें अनवस्था दोष आयगा वस्तुमें एकत्व आदिक संख्या समवाय सम्बन्धसे ठहरे, तो वह समवाय वस्तुमें किस सम्बन्धसे ठहरे ? वह समवायपना भी समवायीपनासे माना जाय तो अनवस्था दोष होता जायगा फिर उस सम्बन्धमें भी प्रश्न करे कि यह सम्बन्ध कैसे बना ? तो यह मानना होगा कि कथंचित् तादात्म्यके बिना समवाय सम्भव नहीं हो सकता। आखिर समवायका स्वरूप यही मानना होगा कि वह कथंचित् तादात्म्रूप है और जो कथंचित् तादात्म्रूप है वह अन्य सम्बन्ध क्या कहलायगा ? वह तो वस्तुरूप ही बन गया। तो जैसे संख्यावानसे संख्या भिन्न नहीं है और कथंचित् भिन्न है उसी प्रकार भाव और अभाव ये वस्तुसे भिन्न नहीं हैं, कथंचित् भिन्न हैं। अगर भाव और अभाव वस्तुसे भिन्न ही मान लिए जायें तो मानो वस्तुमें न भाव रहा न अभाव रहा, तब वस्तु स्वभावरहित हो गया और जो निःस्वभाव हो वह वस्तु नहीं कहला सकता, वह तो शून्य है, अवस्तु है।

द्रव्यत्व व अद्रव्यत्व स्वभावसे भी अनन्यताकी सिद्धि होनेसे वस्तुकी अभिलाप्यत्व की सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि देखिये ! सत्व और असत्वसे अन्य होनेपर भी वस्तुमें चूंकि द्रव्यत्व आदिक स्वभाव पाये जाते हैं। अतः वह निःस्वभाव न बन सकेगा। जो अभी यह बताया था कि भाव और अभाव यदि वस्तु से भिन्न मान लिए जायें तो वस्तु निःस्वभाव बन जायगा। सो वस्तु निःस्वभाव यों नहीं बन सकता है कि वस्तुसे सत्व अन्य रहा आये, असत्व अन्य रहा आये तो रहा आये, पर वस्तुके द्रव्यत्व आदिक अनेक गुण तो अब भी मौजूद हैं, इस कारण वस्तु निःस्वभाव न हो सकेगा। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि जैसे अभी भाव और अभावको वस्तुसे अन्य कह डाला और उसमें द्रव्यत्वआदिकका स्वभाव बता डाला तो द्रव्यत्व आदिकके सम्बन्धमें भी यह कहा जा सकेगा कि वस्तु द्रव्यत्व और अद्रव्यत्वसे अन्य है। जैसे भाव और अभावको वस्तु से अन्य कह दिया जायगा तब वहाँ क्या उत्तर दोगे ? तब तो वस्तुको निःस्वभाव मानना ही पडेगा, द्रव्यत्व अद्रव्यत्वसे अन्य है वस्तु यों कहनेपर वस्तुको निःस्वभाव मानना पडेगा। यदि कहो कि द्रव्यत्व और अद्रव्यत्वसे वस्तु अन्य नहीं है, अनन्य है तब फिर यों ही भाव और अभावसे भी वस्तु अनन्य है, यह सिद्ध हो जायगा। तब यह बात सीधी ही क्यों न मान लेना कि वस्तुमें भाव और अभावकी व्यवस्था स्व-भाव और परभावकी अपेक्षासे होती है। और यों मान लेनेपर यह सिद्ध हो जायगा कि आकाशमें पुष्पका अभाव है। यह जब अभिधेय है, शब्दों द्वारा कहा जाने योग्य है तब भी यह वस्तु ही बन गया और यों मान लेनेपर प्रकृत प्रयोगमें जो उदाहरण दिया है वह निर्दोष सिद्ध हो जाता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषां किं वचनं पुनः।
संवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥ ४९ ॥

अवक्तव्यमें स्ववचन विरोधता—क्षणिक एकान्तवादमें यदि समस्त धर्म अवक्तव्य ही हैं तो उन धर्मोंका फिर कुछ भी कहना या धर्मका उपदेश करना या दूसरोंके लिए अनुमानका लक्षण कहना अथवा किसी के कहे गए हेतुमें दूषण बताना ये सब फिर किस तरह हो सकेंगे ? अर्थात् कुछ भी बोलना न बन सकेगा ? तब वहाँ मौन ही शरण बनेगा। जब एकान्तसे वस्तुको, धर्मोंको अवक्तव्य ही कह दिया गया तो अब वचन बोलना निरर्थक है। तब मौन ही ग्रहण करना चाहिए। यदि ये क्षणिकवादी ऐसा मानें कि सम्बृत्ति रूप वचन जाना जाता है और उन वचनोंके द्वारा फिर दूसरोंको समझाया जाता है तो यह कथन भी प्रलापमात्र है। क्योंकि ऐसी सम्वृत्तिको तो मिथ्या ही मानना चाहिए, क्योंकि उस सम्बृत्तिका रूप परमार्थसे विपरीत बताया गया है फिर वास्तवमें कोई वचन ऐसा नहीं हो सकता जो कि तीर्थ प्रवृत्ति कराये या कुछ भी समझाये। अब फिर भी अवक्तव्यवादियोंसे यह पूछा जा रहा है कि सर्व धर्म यदि वचनके गोचर नहीं हैं, वक्तव्य नहीं हैं तो फिर यह धर्म किस प्रकारसे कहा जायगा ? सब धर्म इतनी भी बात किस तरहसे बोली जायगी ? लेकिन बोल रहे हैं तो स्ववचनसे ही यह विरोध मालूम होता है। जैसे कोई पुरुष दूसरेको समझाये कि देखो मैं मौनव्रती हूं तो इसका यह कहना स्ववचन बाधित है। यदि मौनव्रत है तो "मैं मौनव्रती हूं" इतने शब्द भी वह कैसे कह सका है ? शंकाकार कहता है कि ये सारे धर्म सम्वृत्तिसे वक्तव्य माने गए हैं। इसके समाधानमें प्रथम तो यही बात सीधी जचती है कि वह अगर अवक्तव्य हो तो सम्वृत्तिसे सर्व धर्म वक्तव्य है इतना भी कैसे कहा जायगा ? और, फिर सम्बृत्तिके स्वरूपपर कुछ दृष्टि दें तो सम्वृत्तिका स्वरूप सिद्ध नहीं होता, वस्तुस्वरूप ही सिद्ध बनेगा ?

संवृत्तिका प्रयोग करने वाले क्षणिकवादियों संवृत्तिका अर्थ समझने के लिए ५ विकल्पोंमें प्रच्छना—अब क्षणिकवादी दार्शनिक यह बतायें कि जो बारबार सम्वृत्तिका प्रयोग कर रहे हैं वे कि सम्बृत्तिसे प्रतिपादन है तो वह सम्बृत्ति कहलाया क्या है ? उस सम्बृत्तिका स्वरूप क्या है ? सम्बृत्तिसे सर्व धर्म वक्तव्य है। इस कथनमें सम्बृत्तिका अर्थ क्या स्वरूप है जिसका कि यह तात्पर्य होता कि सर्व धर्म स्वरूपसे वक्तव्य है। इसका यह भाव जाना जा सके कि पररूपसे सर्व धर्म अवक्तव्य है। क्या सम्वृत्तिका लक्षण उभयरूप है ? सम्बृत्तिसे सारे धर्म वक्तव्य हैं इसका तात्पर्य क्या यह माना कि स्वरूप और पररूप दोनोंसे वक्तव्य हैं अथवा सम्बृत्तिका स्वरूप तत्त्व है जिसका कि यह अर्थ कहा जाय कि सम्वृत्तिसे धर्म वक्तव्य है। इसका भाव यह है कि तत्त्व दृष्टिसे सारे धर्म वक्तव्य है अथवा सम्वृत्तिका अर्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या मिथ्यारूप है जिसका कि यह अर्थ लगाया जाय कि सम्बृत्तिसे सर्व धर्म वक्तव्य हैं, इसका भाव यह है कि मिथ्यारूपसे सर्व धर्म वक्तव्य हैं। इस प्रकारके अर्थको स्पष्ट करनेके लिए ५ विकल्प उत्पन्न होते हैं। इन ५ विकल्पोंपर विचार करनेपर सम्वृत्तिका स्वरूप उत्पन्न नहीं होता।

संवृत्तिके प्रथम और द्वितीय विकल्पकी समालोचना—अब संबृत्तिके अर्थके विषयमें उत्थित उन ५ विकल्पोंपर क्रमश विचार कीजिए। सर्व धर्म सम्वृत्तिसे अक्तव्य हैं, इसका अर्थ यदि यह कहा जाय कि स्वरूपसे वक्तव्य है तब तो पदार्थ अवक्तव्य कैसे कहा जा सकेगा ? जब पदार्थ स्वरूपसे वक्तव्य है तो वक्तव्य ही रहे, वक्तव्यसे विपरीत अवक्तव्यताकी बात कैसे लगाई जा सकेगी ? जो स्वरूपसे वक्तव्य हैं उनको अवक्तव्य बतानेमें बड़ा विरोध है। जब पदार्थ सही है और स्वरूपसे भी वक्तव्य है फिर भी न बोला जा सके, ऐसी गुन्जाइश कहाँ रहती है ? अतः स्वरूपसे सब धर्म वक्तव्य हैं, यह अर्थ सम्वृतिसे वक्तव्य है, इसका शङ्काकारको अनिष्ट पड़ रहा है। अब द्वितीय पक्षपर विचार कीजिए ! सम्बृत्तिसे सब धर्म वक्तव्य हैं, इसका तात्पर्य यदि यह कहा जाय कि सब धर्म पररूपसे वक्तव्य हैं तो अब देखिये ! वह पररूप उन धर्मोंका स्वरूप बन गया और उसी प्रकार अब वे अभिलाप्य हो गये याने वचनोंके द्वारा वे सब धर्म कहे जाने योग्य हो गए। अब तो केवल वचनोंका स्खलन ही सिद्ध होता है, वचनोंका चूक जाना ही स्पष्ट होता है। जैसे कोई पुरुष किसीको बुलाना चाहता है और नाम ले बैठे अन्य कुछ, तो वहाँ नामका स्खलन हो गया। भावमें तो उसके यही था कि उसे जो कहना था लेकिन नामसे जब चूक गए तो जैसे वहाँ नामका चूकना भर है, भाव तो सही है, उसी प्रकार स्वरूपसे सब धर्म वक्तव्य है ? बात तो यह कहनी थी अथवा इस द्वितीय पक्षमें भाव तो भीतर यह पड़ा हुआ है, पर कह यह बैठे कि सर्व धर्म पररूपसे वक्तव्य है।

पररूपसे वक्तव्य, हैं संवृत्तिके इस विकल्पके सम्बन्धमें स्पष्ट निर्णय—यहाँ शंकाकार कहता है कि स्वरूप तो विशेषरूप ही होता है और पररूप सामान्यरूप ही होता है। वस्तुका जो स्वलक्षण है, असाधारण धर्म है वह तो विशेषरूप ही है। अब अन्य व्याबृत्तिसे समझना प्रतिपादन करना आदिक जो पररूपका आश्रय लेकर व्यवहार होता है वह सब सामान्यरूप ही है। तब विशेष रूपसे तो अवक्तव्यपना रह गया। उसमें क्या बाधा आयी तो उसका अर्थ निकाल रहे हो कि स्वरूपसे सब धर्म वक्तव्य है। यह अर्थ बन जायगा। सो यह अर्थ नहीं बन सकता। फिर वचन का चूक जाना कैसे बता दिया ? सामान्यसे अभिलाप्य है अर्थात् वचन द्वारा सामान्य ही कहा जा सकता है। वस्तुका असाधारण वस्तु स्वरूप नहीं कहा जा सकता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा अभिप्राय युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि जिस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषरूपको वस्तुका असाधारण धर्म मानते हो, वस्तुमें विशेष रूप परमार्थतया पाया जाता है। जैसे यह सिद्धान्त मानते हो और उसे अवक्तव्य कहते हो तो जैसे पदार्थ में विशेषरूप है उसी प्रकार पदार्थमें सामान्यरूप भी है। और सामान्यरूपको तो वक्तव्यरूपसे स्वीकार कर लिया तो वह भी वस्तुका स्वरूप ही है। वस्तुका जैसा विशेषरूप स्वरूप है उसी प्रकार वस्तुका सामान्यरूप भी स्वरूप है। तो जैसे विशेषरूपको अवक्तव्य कहते हो इसी प्रकार सामान्यरूपको भी अवक्तव्य कहना होगा ? और, सामान्यरूपको वक्तव्य कहते हो तो विशेषरूपको भी वक्तव्य कहना होगा। सामान्य यदि वस्तुका स्वरूप न रहे तो विशेष रूप भी वस्तुका स्वरूप नहीं रह सकता है। और इस तरह जब न सामान्यरूप स्वरूप रहा न विशेषरूप स्वरूप रहा तो वस्तु निःस्वरूप हो जायगा। उसमें फिर कोई स्वभाव विदित न हो सकेगा। अतः यह दूसरा पक्ष भी युक्तिसंगत नहीं है कि सम्बृत्तिसे सर्व धर्म वक्तव्य हैं। इस का भाव यह है कि पररूपसे अवक्तव्य है।

संवृत्तिके तृतीय, चतुर्थ व पञ्चम विकल्पकी समालोचना—अब तृतीय पक्षके विषयमें निरीक्षण करें। सम्वृत्तिसे सर्व धर्म वक्तव्य हैं। इसका तात्पर्य यदि यह कहा जाय कि सर्व धर्म स्वरूप और पररूप दोनोंसे वक्तव्य हैं। तो इस उभय पक्षमें दोनों पक्षोंमें बताये गए दोष आते हैं। जो स्वरूपसे वक्तव्य है यह अर्थ सम्बृत्ति से वक्तव्यका लगाये तो जितने दोष कहे गए हैं और पररूपसे वक्तव्य है, यह अर्थ सम्बृत्तिका लगायें तो उसमें भी जितने दोष कहे हैं वे सभी इस उभय पक्षमें भी लगेंगे। अब चतुर्थ पक्षकी बात देखो—सम्बृत्तिसे सर्व धर्म वक्तव्य है। इसका भाव यदि यह लगाया जाय कि तत्त्वरूपसे सर्व धर्म वक्तव्य हैं तो ठीक है मानो फिर। फिर अवक्तव्यको कैसे कहा जा रहा ? इस प्रसंगमें तो यह जाना जा रहा है कि केवल वचनका चूकना ही बन रहा है, बात तो सही कह रहे हो। तत्त्वसे वक्तव्य है ऐसा कहनेपर सम्वृत्तिसे वक्तव्य है यह कह बैठे। अर्थात् कहना तो यह था कि सर्व धर्म तत्त्वरूपसे वक्तव्य हैं और भाव यही रखा है, पर कह यह बैठे कि सर्व धर्म सम्वृत्तिसे वक्तव्य हैं। तो थोड़ा कहनेमें ही चूके हो, भाव तुम्हारा सही है कि सर्व धर्म तत्त्वतः वक्तव्य है। अब पंचम पक्षकी बात देखिये—सर्व धर्म सम्वृत्तिसे वक्तव्य है। इसका अर्थ यदि यह किया जाय कि सर्व धर्म मिथ्यारूपसे वक्तव्य है तो फिर वह कहा ही क्या गया ? सर्वथा मृषारूपसे कहा गया। सर्वथा मृषा बातोंका कहना तो न कहनेके समान है। सर्वथा मृषा कहा गया है, इसका भाव यह है कि नहीं कहा गया है कुछ भी नहीं कहा गया। उस कहे गएका कोई अर्थ ही नहीं निकलता। इस प्रकार अब मनगढंत मिथ्या विकल्पोंसे क्या लाभ है ? अब वास्तविकतापर आ जाइये !

वस्तुके सर्वथा अनभिलाप्यत्वके कथनके निराकरणका उपसंहार—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो सर्वथा अनभिलाप्य है याने सब धर्म अवक्तव्य ही हैं, ऐसा जो क्षणिकवादमें कहा जा रहा है तो यह बात स्पष्ट ही युक्त नहीं जचती, क्योंकि यदि सर्वथा अवक्तव्य है तो इस शब्दके द्वारा भी वह वक्तव्य न बन सकता था। सब धर्मोंके सर्वथा अवक्तव्य होनेपर यह धर्म अवक्तव्य है, इन धर्मोंसे भी कहना नहीं बन सकता था। और, तब दूसरोंको कुछ समझाया भी न जा सकेगा कौर न कोई सिद्धान्त भी बताया जासकेगा इस विषयमें अब और भी सुनो कि आखिर यह अवाच्य तत्व बना किस तरह है और उसका कोई हेतु नहीं बनता, तब यथार्थ स्वरूपपर आ जाना चाहिए !

अशक्यत्वादवाच्यं किमभावात्किमबोधतः।
आद्यन्तोक्तिद्वयं न स्यात् किं व्याजेनोच्यतां स्फुटम् ॥५०॥

वस्तुके अवाच्यत्वके कारणोंकी शङ्काकारसे पृच्छना—देखिये ! तत्त्व को जो अवक्तव्य कहा जा रहा है सो यह अवक्तव्यता किस कारणसे है ? क्या उसको कहनेकी शक्ति नहीं है ? इस कारण अवक्तव्य है ? अथवा वह तत्त्व है ही नहीं, इस कारणसे वह अवक्तव्य है ? या उसका परिज्ञान नहीं हो पाता इस कारणसे अवक्तव्य है ? यहाँ अवक्तव्यताके होनेमें ३ प्रकारके कारण विकल्पित किए गए हैं कि तत्त्वके अवक्तव्य हो जानेका कारण क्या है ? और यहाँ इन तीन विकल्पोंमें ही जो कुछ कारण पूछना चाहा वह सब पूछ लिया गया है। चौथा कोई प्रकार सम्भव नहीं है। तब शङ्काकारको यह बताना चाहिए कि धर्म वस्तुका स्वलक्षण यदि अवक्तव्य है तो किस कारणसे अवक्तव्य है ? क्या अशक्य होनेसे अवक्तव्य है ? अथवा अबोध होनेसे अवक्तव्य है ? शङ्काकार कहता है कि आपने ये तीनों ही विकल्प उठाकर कारण क्यों पूछा कि इन तीनों कारणोंमेंसे किस कारणसे अवक्तव्य है और कारण भी इन तीनके सिवाय अन्य कोई चौथा विदित नहीं होता यह भी कह डाला। देखिये ! अन्य भी कारणोंसे अवक्तव्यपना सिद्ध हो सकता है। जैसे कोई मौन व्रत ले ले तो मौन व्रत लेनेके कारण भी तत्व अवक्तव्य बन जायगा। अथवा किसीको बोलनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। जो कुछ मतलब न होनेके कारण भी अवक्तव्यपना हो जाया करता है अथवा कोई भयसे भी नहीं बोलता तो उसका न बोलना भयके कारण बन गया या अनेक पुरुष लज्जा आदिकके कारण नहीं बोलते हैं तो उनका न बोलना लज्जा आदिकके कारण बन गया। तो यह क्यों कहा जा रहा है कि तीनों कारणोंमें से कौन कारण है यह बतायें अन्य और कोई प्रकार सम्भव नहीं है ? मौन बत, प्रयोजनका अभाव, भय होना, लज्जा आदिक होना, इन कारणोंसे भी न बोलनेकी बात बन सकती है ! इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि मौन व्रत आदिक जो और कारण बताये हैं वे कारण अशक्यतामें गर्भित हो जाते हैं। मौन व्रतसे यदि कोई नहीं बोल रहा तो चूंकि वह अपने मौन व्रतपर दृढ़ है अतः वचन अब नहीं बोला जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सकता है। तो मौन व्रतके कारण वचन बोलनेकी अशक्यता ही तो हुई और उस अशक्यतासे तत्व अवक्तव्य बन गया। इसी तरह प्रयोजन न हो, भय हो, लज्जा आदि हो तो ऐसे भी प्रभाव यह पड़ा कि अब यह बोल नहीं सकता। तो ये सारे अन्य प्रकार अशक्यतामें ही शामिल हैं, क्योंकि मौन व्रत आदिक जो कारण बताये हैं सो वे सब इन्द्रियके व्यापार न कर सकनेमें निमित्त होते हैं अर्थात् मौन व्रत या भय या लज्जा आदिकसे अब यह प्रभाव हुआ कि पुरुष इन्द्रियके व्यापारको नहीं कर सक रहा है। तो यों समस्त प्रयोजन अशक्यपनेमें शामिल हो जाते हैं।

अबोधका अशक्यत्वमें अन्तर्भाव न होनेसे अबोधके प्रकारान्तरत्वकी युक्तता—शङ्काकार यह कहता है कि तो यों अनवबोध भी याने बोध न होना भी अशक्यपनेमें शामिल कर लिया जाय। तब इस ही कारण अबोध भी प्रकारान्तर न रहेगा, फिर पदार्थकी अनभिलाप्यतामें तीन हेतु विकल्प नहीं बनेंगे, फिर तो दो ही विकल्प रह जावेंगे, सो तीन विकल्प बताना अपनी अज्ञानताका सूचक है! इस शङ्का के समाधानमें कहते हैं कि ऐसी शङ्का करना अज्ञानताका सूचक है। देखिये! तत्वका अवबोध होनेपर किसी ज्ञानीके इन्द्रिय व्यापार किये जानेकी अशक्ति भी रही आये सो बोल न सके तो भी अन्तर्जल्प तो सम्भव है सो अबोध और अशक्यतामें व्यतिरेक व्याप्ति न रही। और, तत्वका बोध न होनेपर भी इन्द्रिय व्यापारकी शक्तिका सद्भाव पाया जाता है सो अबोध और अशक्यतामें अन्वय व्याप्ति न रही। इस कारण अबोध को अशक्यत्वमें गर्भित नहीं किया जा सकता। और भी देखिये! अबोधमें तो बुद्धि की अपेक्षा है याने बुद्धिकी हीनतासे अबोध होता है तथा अशक्यत्वमें करणकौशलकी अपेक्षा है याने इंद्रियोंकी कुशलता न होनेसे अशक्यत्व होता है। इस प्रकार प्रकट सिद्ध है कि अबोध व अशक्यत्वमें स्पष्ट अन्तर है। इस कारण अबोध प्रकारान्तर ही है, अबोधको अशक्यत्वमें गर्भित नहीं किया जा सकता। यों वस्तुकी व धर्मकी अनभिलाप्यताकी सिद्धिमें तीन कारण पूछे गए, सो युक्त ही हैं।

अबोध और अशक्यत्वके कारण तत्त्वकी अवाच्यताकी सिद्धिमें व्यभिचार—सभी पुरुषोंमें बुद्धिका और इन्द्रियकी कुशलताका अभाव कहना युक्त नहीं है। किसी पुरुषके किसी विषयमें ज्ञानका सद्भाव है और सुगतके तो अपार प्रज्ञा है, उसको तो सभी प्रकारका ज्ञान सौगतोंने माना है। क्षमा, मैत्री, ध्यान, दान, वीर्य, शील, बुद्धि, करुणा आदिक १० प्रकारके उत्कृष्ट बल शङ्काकारने माने हैं। इससे सिद्ध है कि कोई पुरुष ऐसा भी है जिसके बहुत ज्ञान है। तब यह मनमें आशय रखना कि किसी पुरुषके बुद्धिका अभाव हो सो बात नहीं है तथा किसी किसी पुरुषके ही इंद्रियकी अकुशलता पाई जाती है। वरना प्रायः अनेक पुरुषोंमें इंद्रिय व्यापारकी कुशलता देखी जा रही है इस कारण जबकि सभी पुरुषोंमें ज्ञान व शक्यपनेका अभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं कहा जा सकता तो यों अशक्यत्व और अबोधके कारण तत्त्वको अनभिलाप्य कहनेका पक्ष खण्डित हो जाता है।

तत्त्वके अभावसे तत्त्वकी अवाच्यताके सिद्धान्तमें तत्त्वशून्यताका प्रसङ्ग—तत्त्वकी अवाच्यताके हेतु पूछनेके लिये जो तीन विकल्प किए गए थे कि तत्त्व अवाच्य क्यों है ? क्या बोलना अशक्य होनेसे या तत्त्वका अभाव होनेसे ? सो उन तीन विकल्पोंमेंसे पहिले और तीसरे विकल्पकी बात तो युक्त नहीं रह सकती। तब इस सामर्थ्यसे जब इन तीन विकल्पोंमें दो विकल्प सम्भव न हो सके याने अशक्य होनेके कारण वस्तुकी अशक्यता है या अबोध होनेके कारण तत्वकी अवक्तव्यता है, ये दो विकल्प सम्भव नहीं हो सकते। तब इस सामर्थ्यसे एक ही बात रह गई कि अभाव होनेसे वस्तु अवाच्य है तब सीधा यह कहना चाहिए कि अर्थका अभाव होनेसे अर्थ अवाच्य होता है, अन्य अन्य बहाने करनेसे क्या फायदा ? स्पष्ट ही कह देना चाहिए कि सर्वथा अर्थका, धर्मका, तत्वका अभाव है। और, जब ऐसा स्पष्ट कह दिया जायगा तब उसमें ठगिया बननेका भी दोष न आयगा। अन्यथा अर्थात् बात तो यही बतानी है कि पदार्थका अभाव है, अब उसको यह स्वलक्षण है, यह सामान्य है, स्वलक्षण अवाच्य है आदिक हेर फेर करके छलपूर्वक बात करनेमें तो अनाप्तपना सिद्ध होता है अर्थात् ज्ञान नहीं है इस कारणसे उस बातको बहानोंसे बताया जा रहा है। तो जब यह बात मान ली कि अर्थका सर्वथा अभाव है तथा धर्म धर्मी सब ही शून्य है, तब यह मंतव्य शून्यवादसे कुछ पृथक न कहलायगा, क्योंकि यहाँ अभाव पक्ष का आलम्बन लिया है। शून्यवादी भी अभावकी ही तो बात कहता है कि कुछ भी तत्व नहीं है और यहाँ भी यह स्वीकार कर लिया कि तत्वका अभाव होनेसे तत्व अवाच्य है। तब चाहे यह कहो कि अर्थका अभाव होनेसे उसकी अवाच्यता है या यह कहो कि सब शून्य है, नैरात्म्य है, इन दोनों बातोंमें कोई अन्तर नहीं है।

शक्यसंकेत होनेके कारण वस्तुकी अनभिलाप्यताका निराकरण—शंकाकार कहता है कि देखिये अर्थका स्वरूप याने स्वलक्षण यों अनभिलाप्य है अर्थात् वचनों द्वारा कहा जा सकने योग्य नहीं है कि उस वस्तुस्वरूपका संकेत बनाना अशक्य है। याने जो पदार्थका परमार्थ स्वरूप है उसको बताने वाला कोई संकेत नहीं बन सकता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन संगत नही है, क्योंकि वस्तु स्वरूपको बतानेके लिये संकेत बनाया जाना शक्य है। देखिये सामान्यरूपसे उसको बतानेका सिद्धान्त आपने ही मान लिया है कि वस्तुका जो स्वलक्षण है, स्वरूप है वह सामान्यरूपसे वक्तव्य होता है और प्रतिभासभेद होनेपर भी चाहे वह सामान्य हो अथवा विशेष हो उस ही परमार्थभूत वस्तुका प्रतिभास होता है। क्योंकि परमार्थभूत वस्तु दृश्य व विकल्प दोनों स्वभाव वाला है। क्षणिकवादमें दृश्य तो कहा गया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस तत्त्वको जो निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा ग्रहणमें आता है, अर्थात् निराकार दर्शन द्वारा जो दृश्य होता है उसको तो कहते हैं दृश्यतत्त्व और विकल्प कहते हैं उस पदार्थ को जो सविकल्प ज्ञान द्वारा ग्रहणमें आता है। ये स्थूल घट पट आदिक विकल्पके विषय कहलाते हैं। तो परमार्थभूत वस्तु, तत्त्व निर्विकल्प ज्ञान द्वारा भी ग्राह्य है और सविकल्प ज्ञान द्वारा भी ग्राह्य है। तो जब सामान्यरूपसे संकेत हो गया तो वह भी तो परमार्थभूत वस्तुका स्वरूप ही है फिर उसे यह क्या कह सकेंगे कि उसका संकेत करना अशक्य है ?

परमार्थ वस्तुकी दृश्यविकल्प्योभयस्वभावता होनेसे शक्यसंकेतता—दृश्यस्वभाव ही परमार्थ है, और विकल्प स्वभाव परमार्थ नहीं है याने विशेष ही तात्त्विक है, सामान्य तात्विक नही है यह बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि जैसा विशेष वस्तुका स्वरूप है उसी प्रकार सामान्य भी वस्तुरूप है, अन्यथा अर्थात् विशेष तो वस्तुका स्वरूप माना जाय और सामान्यको वस्तुका स्वरूप माना जाय, तो ऐसा तो कहीं प्रतीत होता ही नहीं है। अथवा किसी पदार्थका फिर ज्ञान न हो सकेगा। प्रत्यक्ष आदिक ज्ञानोंमें ठीक ऐसा ही प्रतिभास हो रहा है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है, तब जैसे वस्तुका स्वरूप विशेष माना है क्षणिकवादियोंने उसी प्रकार वस्तुका सामान्य भी स्वरूप है याने वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। सो संकेत होओ तो दोनों होओ और संकेत न हो तो दोनोंका ही न होओ। शंकाकार कहता है कि देखिये—यह दोष दिया जा रहा है कि दृश्यकी तरह फिर विकल्पमें भी संकेत न हो सकेगा। तो मत हो। जैसे दृष्य तत्त्वका संकेत नहीं बनता उसी प्रकार सामान्य तत्त्वका भी संकेत मत बनो। इसमें कौन सा विरोध आता है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये—दृश्य लक्षणोंमें संकेत करनेकी शक्ति न होनेपर भी विकल्प सामान्यमें कहीं संकेतपना हो ऐसा नहीं है, जिससे कि सर्वथा यह कहकर कि परमार्थभूत वस्तु के बतानेका कोई संकेत किया ही नहीं जा सकता। इस कारण तत्त्वका स्वरूप अनभिलाप्य है, यह बात कह नहीं सकते, क्योंकि परमार्थभूत पदार्थका किसी भी प्रकार संकेत करना सिद्ध हो रहा है।

शब्दसंकेतके समय विषयभूत पदार्थ न रहनेसे स्वलक्षणका अनभिलाप्यताको शङ्काकारका प्रतिपादन—यहाँ शङ्काकार कहता है कि जो पदार्थ संकेतित हुआ है याने जिस पदार्थके बारेमें कोई संकेत किया या शब्द बोले तो शब्दका विषयभूत वह संकेतित पदार्थ समान कालमें (साथ साथ) रहता ही नहीं है, क्योंकि पदार्थ क्षणिक है। जिस समय पदार्थ उत्पन्न हुआ उसके बाद फिर ज्ञानसे उस पदार्थ को जाना तो जब ज्ञान पदार्थको जानने चला उस समय तो वह पदार्थ रहता ही नहीं है, क्योंकि पदार्थ एक क्षणके लिए हुआ करता है, ऐसा क्षणिकवादमें माना है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जब शब्द व्यवहारके सम्बन्धमें वह पदार्थ रहता ही नहीं है तब वह पदार्थ विषयी शब्दके द्वारा वाच्य नहीं हो सकता जिस समय पदार्थ है नहीं उस समय उस पदार्थको शब्द कह कैसे देगा ? यदि पदार्थके अभावके समयमें भी शब्द पदार्थको कह दिया करे तो जितनी अतीतकी घटनायें हुई हैं वे सभीकी सभी शब्द द्वारा वाच्य हो जायेंगी। अतः यह परमार्थ स्वरूप है, स्वलक्षण है वह शब्द द्वारा वाच्य नहीं हो सकता। केवल पश्चात् विकल्प ज्ञान द्वारा उसमें कल्पनायें उठती हैं और तब उसका ज्ञान निर्णीत किया जाता है।

भिन्नकाल होनेसे शब्दसंकेत द्वारा वस्तुका ज्ञान न माननेपर भिन्न काल होनेसे प्रत्यक्षज्ञान द्वारा भी वस्तुका ज्ञान न होनेका प्रसङ्ग होनेसे उक्त शङ्काकी निष्प्राणता—उक्त शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह दलील तो प्रत्यक्षज्ञान में भी दी जा सकती है, क्योंकि प्रत्यक्षज्ञानसे भी जब पदार्थको निरखा जा रहा है तो जिस समय पदार्थ उत्पन्न हुआ उस समय प्रत्यक्षके द्वारा न निरखा गया, जब प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा उसे ग्रहण किया गया तब वहाँ वह पदार्थ न रहा। तो विषय और विषयी ये भिन्न-भिन्न कालमें रहते हैं, यह दलील तो प्रत्यक्षज्ञानमें भी दी जा सकती है। जैसे कि शब्दका विकल्पका काल जुदा है और परमार्थभूत पदार्थकी उत्पत्ति होनेका काल उससे पहिले हो चुका है। इसी तरह जब पदार्थ उत्पन्न हुआ है उस समय प्रत्यक्ष द्वारा प्रतिभास नहीं हो रहा है। और जब प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा प्रतिभास किया जा रहा है उस समयमें वह विषय है नहीं। प्रत्यक्षज्ञान होनेके समयमें विषयभूत पदार्थ नहीं है इसमें यह युक्ति काम दे रही है कि प्रत्यक्षज्ञानके समयमें यदि विषयभूत पदार्थ मौजूद होता तब विषयभूत पदार्थको क्षणिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि अब विषयभूत पदार्थ और जानने वाला ज्ञान, इन दोनोंको एक समयमें मान लिया गया है, लेकिन एक समयमें वेद्य वेदकको माना नहीं गया है, क्योंकि वेदक तो है कार्य और वेद्य है कारण। क्षणिकवादमें यह माना गया है कि ज्ञान पदार्थसे उत्पन्न होता है, तो पहिले तो पदार्थ उत्पन्न हुआ। जब पदार्थ उत्पन्न हो ले तब उस से ज्ञान उत्पन्न हो ! तो जब ज्ञानकी उत्पत्ति होनेका समय आया उस समयमें वह पदार्थ न रहा। यदि वेद्य वेदकको एक समयमें मान लिया जाय तो क्षणिकपना नहीं रहता और सिद्धान्तमें भी नहीं माना कि वेद्य वेदकका एक ही काल होता है।

प्रत्यक्षज्ञानसे वस्तुकी सही जानकारी होनेकी तरह शब्दसंकेतसे भी वस्तुकी सही जानकारी होनेसे वस्तुके वक्तव्यत्वकी सिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि देखिये! विषय और विषयी मायने प्रत्यक्ष ज्ञान, इन दोनोंका यद्यपि भिन्न काल है फिर भी पदार्थका प्रत्यक्ष ज्ञान जो उत्पन्न हुआ है उस प्रत्यक्ष ज्ञानमें सही परिज्ञान होता है, विपरीत परिज्ञान नहीं होता। जैसा ही वह पदार्थ है वैसा ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा दृश्य हो जाता है। इस कारण पदार्थ और प्रत्यक्ष ज्ञान इनका भिन्न काल होनेपर भी चूंकि उस पदार्थसे उत्पन्न हुए प्रत्यक्षज्ञानमें विपरीत परिचय नहीं होता इस कारण यह मान लेना चाहिए कि यद्यपि विषय विषयीका काल भिन्न भिन्न है फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञानने परमार्थभूत स्वलक्षणको सही ही जान लिया है। इस शंकाके उत्तरमें कहते कि ऐसी अविपरीत जानकारी तो शब्द द्वारा भी पायी जाती है। याने शब्दके द्वारा जो कुछ वर्णन किया जाता है, वह ठीक वस्तुके स्वरूप के अनुसार ही किया जाता है। वस्तु स्वरूपसे विरुद्ध वर्णन नहीं होता। शब्दसे अर्थको जानकर जो पुरुष उस पदार्थमें प्रवृत्ति करता है वह विपरीत कुछ भी नहीं समझ रहा है। जैसे कि जानने वाला प्रत्यक्ष ज्ञानसे जो वस्तुके स्वलक्षणको जान रहा है उसको बताये कि प्रत्यक्ष ज्ञानसे विपरीत जानकारी नहीं होती। इसी तरह शब्दसे पदार्थको जानकर भी पदार्थके विपरीत जानकारी नहीं होती है और उसका प्रमाण यह है कि संकेत किये जाने वाले शब्दसे पदार्थको समझकर ठीक सही प्रवृत्ति करता है। तो जब शब्दसे भी परमार्थभूत वस्तुका स्वरूप सही ही जान लिया गया तब यह कैसे कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष ज्ञानमें याने निराकार दर्शनमें ही अविपरीत जानकारी होती है और शाब्दिक ज्ञानमें याने सविकल्प ज्ञानमें अविपरीत जानकारी नहीं होती। वस्तुका जैसा स्वरूप है वैसा ही सही स्वरूप दर्शनमें भी समझा जाता है और विकल्प ज्ञानमें भी समझा जाता है। यदि शङ्काकार यह कहे कि किसी किसी विकल्पमें विपरीत जानकारी भी तो प्राप्त हो जाती है, इस कारण सभी विकल्प ज्ञानोंमें विपरीत जानकारी स्वीकार कर लेनी चाहिए! यदि शंकाकार ऐसा कहे तो सुनो! फिर तो किसी किसी दर्शनमें भी याने प्रत्यक्ष ज्ञानमें भी विपरीत जानकारी पाई जाती है, तो इसके बलपर सभी दर्शनोंमें विपरीत जानकारीकी कल्पना करलो। क्योंकि, दर्शनमें और विकल्पमें किसी भी प्रकारका अन्तर नहीं पाया जाता। जैसे प्रत्यक्ष ज्ञानसे याने विराकार दर्शनसे वस्तुको निरखा गया, जो जो समझा गया उस ही तत्त्वको सविकल्प ज्ञानके द्वारा निर्णीत किया गया। उससे कुछ भी विपरीत स्वरूपकी जानकारी नहीं बनायी जाती है। अतः मान लेना चाहिए कि वस्तुका स्व-स्वरूप जैसे विशेष है उस ही प्रकार सामान्य भी स्वरूप है। तब प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मक ही होता है और तब सामान्य अभिलाप्य है। वचनों द्वारा कहा जा सकने योग्य है, विशेष भी अभिलाप्य है। अर्थात् वचनों द्वारा कहा जा सकने योग्य है। अतः वस्तुको सर्वथा अभिलाप्य कहना प्रमाणसिद्ध बात नहीं है।

दर्शन औरविकल्पका विषय परमार्थभूत एक वस्तुको न माननेपर प्रमाण व प्रमेयका अभाव हो जानेसे तत्त्वशून्यताका प्रसंग—दर्शन और विकल्पको यदि परमार्थ एक वस्तुमें होना न माना जाय अर्थात् दर्शन और विकल्प एक पदार्थके सम्बन्धमें ही होते हैं और वे पदार्थ परमार्थभूत हैं यदि ऐसा नहीं मानते, तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ भी सिद्ध नहीं होता। न दर्शन रहेगा न विकल्प रहेगा और न प्रमाता प्रमेय कुछ भी सिद्ध हो सकता। क्योंकि दर्शनको तो माना परमार्थभूत और निर्णयको माना सम्वृतिसे कल्पनामात्र और दर्शन करता है वस्तुको विषय और निर्णय करता है अवस्तुको विषय ऐसा क्षणिकवादमें माना है। तो यहाँ यह बात बन गई कि जो पदार्थ देखा गया है उसका तो निर्णय नहीं होता, निर्णय कुछ अन्य कल्पनाका होता याने जैसा नहीं देखा गया अर्थात् निर्विकल्प प्रत्यक्षके द्वारा जो ग्रहणमें नहीं आया कल्पना उसकी की गई और तब जैसे अदृष्टका निर्णय हुआ है अर्थात् परमार्थभूतका निर्णय नहीं है तो वह अदृष्ट निर्णय तो प्रधान आदिकके स्वरूपकी तरह हो गया। इसमें जान क्या रही ? और तब यह भी बताइये कि जो दर्शन याने प्रत्यक्ष कल्पनासे अपोढ़ है, कल्पनासे परे है उस प्रत्यक्ष ज्ञानका कैसे निर्णय होगा कि यह परमार्थ एक वस्तुको विषय करता है, क्योंकि दर्शनसे तो दीखा मात्र, निर्णय वहाँ होता नहीं, तो बिना निर्णय यह कैसे मान लिया जायगा कि दर्शन परमार्थभूत वस्तुको विषय करता है। देखिए ! जो इष्ट हुआ है स्वलक्षण उसमें तो निर्णय सम्भव हो नहीं सकता, क्योंकि निर्णय स्वलक्षणको विषय नहीं करता है, सो क्षणिकवाद सिद्धान्तमें माना गया है। तो निर्णय तो दृष्ट स्वलक्षणका बना नहीं, और जो अदृष्ट है जिसे सामान्य कहते हैं उसका यदि निर्णय चल रहा है तो निर्णय चले तो भी क्या है ? जब वह परमार्थभूत नहीं है और एक मायारूप कल्पना ही है तो वह निर्णय प्रधानकी तरह हो गया अचेतन, कुछ न कर सकने वाला। तब दृष्टका निर्णय कभी हो ही न सकेगा इस तरह समस्त प्रमाणोंका अभाव होनेसे प्रमेय भी न रहेगा, क्योंकि न तो प्रत्यक्ष प्रमाणकी सिद्धि हो सकी और न अनुमान प्रमाणकी सिद्धि हो सकी। तो समस्त प्रमाणोंका अभाव होनेसे प्रमेयका अभाव भी सिद्ध हो गया। अब अवक्तव्यताका एकान्त करने वालेका सिद्धान्त यही बन बैठा कि शून्य है तत्त्व, नैरात्म्य है, क्योंकि अब तो संकेत करना सर्वथा अशक्य मान लिया। जब अशक्यत्व पक्ष भी सम्भव न हो सका और अबोध पक्ष भी सम्भव न हो सका। तब यही सिद्ध हुआ कि तत्त्व शून्य है, अभाव है, अब कोई छल बहाना मिस करके उसको बढ़ानेकी कोशिश क्यों की जा रही है ? अब यह भी देख लीजिये कि क्षणिकवादमें कृतनाश और अकृतका आगम बन बैठेगा याने जिस पुरुषने कोई पाप किया है, अब उस पापका फल क्या और किसे मिलेगा ? जिसने किया वह भोक्ता न रहा और जिसने न किया वह भोक्ता बन बैठा तो अब किस तरहसे यह बात बन सकी कि जो करे सो भोगे ! और फिर कुछ व्यवस्था ही न रहेगी तथा ऐसी स्थिति एक हास्यके काबिल ही रहेगी। इसी बातको अब समंतभद्राचार्यदेव कारिकामें कह रहे हैं।

हिनस्त्यभिसंधात न हिनस्त्यभिसंधिमत्।
बध्यते तद्द्वयापेतं चित्तं वद्धं न मुच्यते॥ ५१॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्षणिकैकान्तपक्षमें अन्य अन्य जीवके ही कर्तृत्व भोक्तृत्व, बन्धन, निर्वाण होनेकी विडम्बना—जिसने अभिप्राय नहीं किया वह तो हिंसा करता है और जो हिंसा नहीं करता है वह अभिप्राय वाला बना याने जिसने अभिप्राय किया किसीको मारनेका, वह तो मार न सका, क्योंकि क्षणिकवादमें क्षण-क्षणमें नये-नये जीव होना बताया गया है। तो मारनेका अभिप्राय करने वालेने हिंसा नहीं की और हिंसा की दूसरेने जिसने कि अभिप्राय नहीं बनाया। अब आगे भी देखिये कि कर्मसे बंधने वाला कोई दूसरा ही जीव हुआ। जिसने हिंसा की वह नहीं बंधा किंतु बंधा कोई अन्य जीव और फिर इन तीनोंसे अलग है कोई जिसको बताते हैं निर्वाण! तो यह सब अव्यवस्था कैसे दूर की जा सकती है? हिंसाका जो अभिप्राय रखे ऐसा चित्तक्षण अथवा चित्त तो प्राणियोंकी हिंसा नहीं कर रहा, क्योंकि उसका निरन्वय नाश हो गया याने जिसने अभिप्राय किया वह उसी क्षणमें ही विलीन हो गया और संतान वासना भी कुछ वहाँ सहारा नहीं दे सकती, क्योंकि निरन्वय क्षणिकवादमें संतान और वासना सम्भव नहीं है। तो जिसने अभिप्राय बनाया उस चित्तने हिंसा नहीं की। अब उसके बादका जो चित्त है उसने हिंसा की, तो उत्तर चित्तने हिंसा करनेका अभिप्राय नहीं किया, ऐसा चित्त हिंसा कर बैठा। और, इसी क्षणक्षयके प्रसङ्गमें यह सिद्ध हो जायगा कि हिंसाका अभिप्राय करने वाला और हिंसा करने वाला इन दोनोंमेंसे कोई नहीं बंधा, किंतु इसके बादका कोई तृतीय चित्त कर्मसे बद्ध हुआ। अब जो चित्त बंधा वही मुक्त नहीं होता। मुक्त हुआ कोई चौथा ही चित्त। तो ऐसी प्रलापकी बातें निरन्वयके सिवाय अर्थात् जिसमें बुद्धिकी धारा नहीं है ऐसा किसी उन्मत्तके सिवाय और कौन कह सकेगा? और इस क्षणक्षयके सिद्धान्तमें संतान आदिक भी सम्भव नहीं होते कि जिससे इन सबका मेल बैठा लिया जाय! तो अब हुआ क्या कि जो करनेका अभिप्राय रखता है कि मैं इस कार्यको करूं, कर्तव्यमें जिसका चित्त लगा है, उसका तो विनाश हो गया। अब वह अभिप्रायका करने वाला काम न कर सका और जिसने कार्य किया उसका कार्य करनेकी इच्छा न रही, क्योंकि उसका निरन्वय नाश हो गया और इन दोनोंसे अलग ही कोई हुआ जिसके बध बन बैठा और उनमेंसे किसीने यम नियमका कर्तव्य नहीं निभा पाया। यम नियमका कर्तव्य निभाने वाला कोई तीसरा चित्त हुआ तो अब करने वालेको नुकसान फायदा क्या हुआ? वह कुछ न कर सका और न उसको फल मिल सका तो ऐसी अव्यवस्था क्षणिकवादमें हो जानेसे क्षणिकैकान्त युक्तिसङ्गत नहीं रहा।

अनेकान्तवादके न माननेपर क्षणिकपक्षमें किसी भी एक जीवके कर्तृत्व, भोक्तृत्व, संयमन बंधन व निर्वाणकी असिद्धि—अनेकान्तवादियोंके यहाँ यह अव्यवस्था नहीं है, क्योंकि अनेकान्तवादमें बताया है कि कोई एक जीव प्रतिक्षण परिणमन करता रहता है। सभी जीव प्रतिक्षण परिणमन करते हैं और जीव सदा रहते ही हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो प्रतिक्षण परिणामकी दृष्टिसे उनमें अन्यता हुई कि किया दूसरेने, बाँधा दूसरेने और फल भोगा तीसरेने तो यह बात केवल पर्याय तक ही रही किंतु उन सब पर्यायों में रहने वाला तो द्रव्य वही एक जीव है। उसकी तो सब परिणमनोंमें सत्ता है, सभी परिणतियोंमें उसका अन्वय है। तो जिसने करनेकी इच्छा की थी अपने कर्तव्यमें वह ही करने वाला बना, क्योंकि जीव वही है और जिसने किया यद्यपि वह पर्याय विलीन हो गई पर जीव तो वही है, तो कर्मबंध उस ही जीवके हुआ और कर्मबन्धकी पर्याय दूर हो गई पर जीव तो वही है, तो अब जो निर्वाणका साधक बन गया तो वही जीव तो बन गया और जब मुक्त होगा तो वही जीव मुक्त होगा। इसमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं आता है। शङ्काकार कहता है कि क्षणिकवादियोंके यहाँ भी तो संतान एक माना गया है। तब पूर्वपूर्व वासनासे शुरू हो होकर उत्तर-उत्तरके चित्त विशेष उत्पन्न होते रहते हैं। तब यह उलहना क्षणिकवादियोंको भी नहीं दिया जा सकता। इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि संतानको तो अवास्तविक माना गया है क्षणक्षयसिद्धान्तमें अर्थात् संतान वस्तु नहीं है। तब वहाँ कार्य कारण भी नहीं बन सकता, किसी भी प्रकारका अन्वय नहीं रह सकता। जब जो करे सो ही भोगे, सो ही बंधे, वही साधनके द्वारा मुक्त हो, ये बातें सिद्ध नहीं हो सकती। और, सुगत हों अथवा भक्तजनोंके चित्त हों, सभीमें फिर संतान मान लिया जाय यों संतान संकरता हो जायगी इत्यादि दोषोंकी बात भली प्रकार पहिले बता दी गई है। तात्पर्य यह है कि क्षणिक एकान्तवादमें कर्ता, कर्म, बंध, मोक्षकी व्यवस्था नहीं हो सकती।

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
चित्तसंततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः ॥ ५२ ॥

क्षणिकैकान्तपक्षमें हिंसकमें हिंसा हेतुत्वके अभावका प्रसङ्ग तथा मोक्षकी अष्टांगहेतुताके अभावका प्रसङ्ग—क्षणिक एकान्तमें वस्तुके विनाशको अहेतुक माना गया है। तो जब वस्तुका नाश किसी कारणसे होता ही नहीं है तो किसी जीवकी हिंसा करने वाला हिंसक पुरुष हिंसाका कारण न बन सकेगा। फिर हिंसक पुरुष खराब क्यों कहलायगा? वह तो किसीकी हिंसाका कारणभूत ही नहीं है। क्षणिकवादमें दूसरा दोष यह भी है कि वहाँ मोक्ष माना गया है चित्तसंततिनाश को, सो जब चित्तकी संततिका विनाश हो जाता है, जो प्रतिक्षण नये-नये जीव उत्पन्न होते रहते हैं उन चित्तक्षणोंमें जो संतति बन रही है उस संततिका नाश होगया इसीके मायने निर्वाण है और उसे बताया गया है कि वह निर्वाण सम्यक्त्व संज्ञादिक ८ अङ्गोंके कारणसे होता है। तो यह बात तो परस्पर विरुद्ध हो गई कि जब चित्त-संततिका नाश अहेतुक है, सभी विनाशोंको क्षणिकवादी अहेतुक मानते हैं फिर उस चित्तसंततिनाशको अष्टाङ्गहेतुक कैसे कह दिया गया? सो ये क्षणिकवादी लोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विनाशको सर्वथा अहेतुक मानते हैं तो उस मंतव्यमें ये दोष आते हैं। यदि किसी जीवकी हिंसा करने वालेको हिंसक कह दिया जाय तो कैसे कहा जा सकेगा ? जब वह किसीकी हिंसाका कारण ही नहीं है, क्योंकि हिंसाका अर्थ है नाश और नाशको माना है अहेतुक। तो नाशको अहेतुक भी माने और हिंसाका किसीको कारण बतायें कि यह हिंसक हो गया, सो यह तो परस्पर विरुद्ध बात है। दूसरा दोष यह है कि निर्वाण माना गया है संतानका मूलतः विनाश होनेको अर्थात् जहाँ चित्तोंकी संतति का नाश हो जाता है उसको निर्वाण कहते हैं। तो निर्वाण तो विनाश स्वरूप कहलाया और फिर उसे माना जा रहा है कि अष्ट अङ्गके कारणोंसे निर्वाण होता है तो निर्वाण तो नाशस्वरूप है, वह अष्ट अङ्गके कारण हुआ है, यह कैसे कहा जा सकता है ? सो कोई विनाशको अहेतुक मान करके भी चित्तसंततनाशको अष्टाङ्ग हेतुक माने तो वह स्वस्थ नहीं कहला सकता, प्रलाप करनेवाला सिद्ध होता है।

चित्तसंततिनाशरूप मोक्षको अष्टाङ्गहेतुक कहने और नाशको अहेतुक कहनेमें स्ववचनबाधितता—मोक्षके हेतुभूत ८ अङ्ग यों बताये गए हैं कि पहिला अंग है सम्यक्त्व जिसकी व्याख्या तो शब्दानुसार यों ही की जाती है कि जैसा तत्त्व है उसको वैसा जान लेना, पर इसके सिद्धान्तमें तत्त्व क्षणक्षयरूप माना गया है। तो वैसा ही माननेको यहाँ सम्यक्त्व कहा गया है इसे बुद्धधर्म नामसे भी कहा है दूसरा हेतु है संज्ञा। स्त्री आदिका अभिधान याने वाचक शब्द संज्ञा है। जहाँ कुछ विधिका उपयोग हो, ज्ञानप्रकाश हो ऐसे अभिधानको संज्ञा कहते हैं। तीसरा हेतु माना गया है संज्ञी अर्थात् स्त्री आदिक पदार्थ। जो संज्ञासे संकेतित हुए हों ऐसे पदार्थ संज्ञी कहलाते हैं। चौथा मोक्षांग माना गया है वचन व कायका व्यापार। पांचवाँ मोक्षांग माना गया है अन्तर्व्यायाम। अपने आपके अपने ही भीतर वायुनिरोध—प्राणायामादि की कोई प्रक्रिया बनाना। छठा है मोक्षांग शङ्काकारका अजीव मयने जीवका अभाव समझना, जीवका भाव न बनाना कि मैं जीव हूं या यह जीव है। सातवाँ मोक्षाङ्ग है स्मृति याने तीनों पिटकोंके अर्थका अनुचिन्तन। आठवाँ हेतु कहा है समाधि, समाधि का अर्थ है ध्यान। तो यों सम्यक्त्व, संज्ञा, संज्ञी, वाक्काय कर्म, अन्तर्व्यापार, नैरात्म्यदर्शन, स्मृति अर्थात् क्षणिकवादके सिद्धान्तोंके अर्थका चिंतवन और ध्यान। इस तरह ८ अङ्गोंके कारणसे निर्वाणकी बात कहते हैं क्षणिकवादी और यहाँ चित्तसंतति विनाशरूप निर्वाणको अहेतुक माना है तो ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। अहेतुक विनाश मानना और फिर किसी जीवको हिंसक मानना। जैसे इन दो बातोंके कहने में विरोध है इसी प्रकार निर्वाणको अष्टांगहेतुक मानना और फिर उस चित्तसंतति नाशको अहेतुक मानना इन दोनोंमें परस्पर विरोध है। जैसे कि कोई पुरुष यदि सुगतको सर्वज्ञ भी कहे और असर्वज्ञ भी कहे तो इन दोनोंमें विरोध माना जाता है और वहाँ यह समर्थित किया जाता है कि सुगत तो सर्वज्ञ ही है, असर्वज्ञ नहीं। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जैसे यहाँ सर्वज्ञत्व व असर्वज्ञत्वमें विरोध उपस्थित किया जाता है उसी प्रकार यहां विनाशको अहेतुक कहकर फिर हिंसा हेतु बताये व मोक्षको अष्टांगहेतुक बताये इन वचनोंमें भी परस्पर विरोध है, इस कारण क्षणिकएकान्त पक्ष युक्तिसङ्गत नहीं।

विरूपकार्यारम्भाय यदि हेतुसमागमः।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसावविशेषादयुक्तवत् ॥ ५३ ॥

विरूपकार्यारम्भके लिये हेतुसमागम माननेपर नाशके लिये भी हेतुसमागमकी सिद्धि—यदि क्षणिकवादी यह कहें कि हेतुका समागम तो विरूपकार्यके आरम्भके लिए होता है अर्थात् जितने भी कार्य होते हैं वे सब माने जाते हैं विरूप अर्थात् विसदृश, क्योंकि क्षणिकवादमें सदृश कार्य नहीं हुआ करते, क्योंकि उनका अन्वय नहीं है। जब निरन्वय हैं सब पदार्थ, तो एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे चाहे सदृश जचे, पर वह है विकल्पकी बात, परमार्थतः सारे पदार्थ अन्य अन्य हैं, अतएव ये सब कार्य विसदृश ही होते हैं। यों क्षणिकवादमें कार्योंको विसदृश माना है और ऐसे उस विरूपकार्यके प्रारम्भके लिए हेतुओंका व्यापार होना माना गया है। जैसे कि घटकार्यके आरम्भके लिये कारणभूत व्यापृत कुम्हार, दण्ड, चक्र आदि हेतुओंका समागम होता है, पटारम्भके हेतुभूत कुविन्द, तुरी, शलाका व्यापार होता है इस कारण वह सब व्यापार विरूपकार्यकी उत्पत्तिके लिए होता है, ऐसा तथागतोंने माना है। ऐसा यदि शङ्काकार स्वीकार करता है तो उसका अर्थ यही हुआ कि उन सब विरूप कार्योंके आरम्भमें हेतुका समागम आश्रयभूत हो गया अर्थात् इन हेतुओंके आश्रयसे विरूप कार्य कहलाया। वस्तुतः तो बात वहाँ एक है। किसी पर्यायका उत्पाद है तो वही किसी पर्यायका विनाश कहलाता है। तो यों नाश और उत्पादका कारण होनेसे विनाशका भी आश्रय हेतुका समागम हुआ और उत्पादका भी कारण हेतुका समागम हुआ। और वह हेतु समागमका आश्रय कार्यरूप नाश और उत्पादसे अभिन्न ही है। वह कोई जुदा नहीं है, क्योंकि नाश और उत्पादमें अभेद है। किस तरह नाश और उत्पादमें अभेद है ? सो सुनो !

उदाहरणपूर्वक विनाश व उत्पाद दोनोंकी एककारणकलापजन्यताका प्रतिपादन—जैसे सीसमपना और वृक्षपना इनमें अभेद है। शीशम कहीं अलग हो और वृक्षपना कहीं अलग हो ऐसा तो नहीं पाया जा रहा। शीशमपना और वृक्षपना इनमें तादात्म्य है, इसी कारण वह अपृथक है। तब उनमें जो भी कारण पड़ता है वह दोनोंके लिये भिन्न नहीं है। जैसे जल, मिट्टी, वायु आदि से शीशम वृद्धिको प्राप्त होता है तो उसीका ही अर्थ है कि वह वृक्ष वृद्धिको प्राप्त होता है अथवा चित्रज्ञान और नील आदिक प्रतिभास ये दोनों भी तादात्म्य सम्बन्धको प्राप्त हैं। जो एक ऐसा विचित्र ज्ञान है, जिसमें नील पीत आदिक अनेक पदार्थोंका प्रतिभास है तो वहाँ चित्र

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञान व नीलादि प्रतिभास ये दोनों तादात्म्यरूपसे रह रहे हैं अपृथक्‌सिद्ध हैं, नीलादिक प्रतिभास जहाँ हैं वहाँ ही तो उस ज्ञानकी सत्ता है। उन दोनोंका जो कारणसमूह है वह भी भिन्न नहीं है अर्थात् जो भी कारण नील आदिक प्रतिभासका है वही कारण चित्रज्ञानका है, क्योंकि इनका आत्मलाभ एक कारण समूहसे बना है। पदार्थोंसे ज्ञान की उत्पत्ति मानी है तो पदार्थोंसे ही वहाँ नील आदिक प्रतिभासोंकी भी उत्पत्ति है। सो जैसे तादात्म्यको प्राप्त हुए चित्रज्ञान व नीलादि प्रतिभास इन दोनों तत्त्वोंका कारण सन्निपात एक होता है, भिन्न नहीं होता उसी प्रकार नाश और उत्पाद ये अभिन्न हैं। उस ही उत्पादका नाम नाश है और उस ही नाशका नाम उत्पाद है। उत्तरपर्यायकी दृष्टिसे उत्पाद है पूर्वपर्यायकी दृष्टिसे नाश है। तो जब नाश और उत्पाद अनन्य है एकसमय हैं तो उनके कारणसमूह भी भिन्न नहीं हैं। जो कारण समूह उत्पादका है, वही कारणसमूह नाशका कारण है अन्यथा अर्थात् नाश और उत्पादको यदि भिन्न कारणोंसे उत्पन्न हुआ माना जाय या चित्रज्ञान नील आदिक प्रतिभासको भिन्न कारणसे जन्य माना जाय, तब उनमें तादात्म्य ही सम्भव नहीं हो सकता है। तब यह मानना चाहिए कि पूर्वाकारका विनाश और उत्तराकारका उत्पाद इन दोनोंका वह कारणसन्निपात भिन्न नहीं है। घटका विनाश ही जैसे खपरियोंका उत्पाद कहलाता है ऐसे ही सब स्थानोंमें किसी उत्तरभावका उत्पाद ही पूर्वभावका नाश कहलाता है। विनाश नीरूप नहीं माना गया है अर्थात् विनाशका कोई आकार ही नहीं है, उसका कोई रूपक ही नहीं है, ऐसा नहीं माना गया है, क्योंकि विनाश उत्तरके उत्पादरूप है, ऐसा सभी लोग समझ रहे हैं। यदि विनाश और उत्पादको भिन्न कारणसे माना जाय तो उत्पाद और विनाशका विरोध हो जायगा। जो एक ही समयमें उत्पाद विनाश पाया जा रहा है फिर ऐसा उत्पाद विनाश सम्भव नहीं हो सकता तथा भिन्न कारणसे जन्य माननेपर नैयायिक मतका भी प्रसङ्ग हो जायगा।

उत्पाद हेतुसे अतिरिक्त हेतु न होनेसे विनाशको अहेतुक माननेपर विनाश हेतुसे अतिरिक्त हेतु न होनेसे उत्पादको अहेतुक माननेका प्रसङ्ग—यह शङ्काकार विसदृश कार्यकी उत्पत्तिका जो कारण मान रहा है, उस हेतुसे अलग कोई हेतु नहीं है विनाशके लिए। इस कारण भी पूर्व आकारके विनाशको अहेतुक कह रहा है। सो विनाशमें उत्पाद हेतुसे अलग हेतु न होनेसे विनाशको अहेतुक कहा जा रहा है यों ही उत्पादमें विनाश हेतुसे अलग हेतु न होनेके कारण उत्तरकार्यके उत्पादको भी अहेतुक क्यों नहीं कह डालते? जैसे शङ्काकारकी यह दलील है कि कार्यकी उत्पत्तिके लिए जो कारण हैं, उन कारणोंसे भिन्न अन्य कोई कारण नहीं है विनाशका, इस कारण विनाश अहेतुक है तो वहाँ यह भी कहा जा सकता है कि पदार्थ के नाशका जो कारण है उस कारणसे अलग अन्य कुछ भी हेतु नहीं है उत्पादका, तब यों उत्पादको भी अहेतुक मान लेना चाहिए। इस तरह विचार करनेपर मानना यही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होगा कि विनाश और उत्पादका वही एक कारण कलाप हेतु है जिस कारण समूहसे कार्यका उत्पाद हुआ उसी कारण समूहसे पूर्व परिणामका विनाश हुआ।

सहेतुक या अहेतुक कहनेमें उत्पाद व विनाशकी समान कक्षा—शंकाकार कहता है कि विसदृश संतानके उत्पादके लिए हेतुके सन्निधान हुआ करते हैं, परंतु विनाशके लिए नहीं हुआ करते। अर्थात् हेतुओंका जुटना विसदृश सतानकी उत्पत्तिके लिए है अर्थात् विसदृशकार्यकी उत्पत्तिके लिए है, पर विनाशके लिए नहीं है, क्योंकि जो पूर्व पदार्थ है उसका विनाश तो स्वभावतः हो जाता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा मानने वाला शंकाकार फिर यह क्यों न मान ले कि उत्तरक्षणका उत्पाद भी स्वरसतः हो जाता है। यहाँ यह कहा जा सकता कि हेतुका जुटाव पदार्थके विनाश के लिए होता है, परन्तु उत्पादके लिए नहीं होता। विनाश सहेतुक है और उत्पाद स्वरसतः हो जाता है, सो उत्तरक्षणके उत्पादका जो कारण है वह भी अकिञ्चितकर बन जायगा, जैसे कि विनाशके कारणको अकिञ्चितकर माना है क्षणिकवादियोंने, उन हेतुओंने किया कुछ नहीं। जैसे कि जब डंडा मारकर घटका विनाश किया जाता है तो वहाँ उनका यह आशय रहता है कि डंडेने घटके विनाशमें कुछ नहीं किया, किन्तु खपरियोंके उत्पादमें व्यापार किया। तो वहाँ यह भी तो कहा जा सकता कि उस डंडे ने खपरियोंके उत्पादके लिए कुछ नहीं किया, किन्तु घटके विनाशका उसने व्यापार किया। तो यों दोनों ही जगह एक समान चर्चा है। अतः मान लेना चाहिए कि हेतुका समागम विनाशका कारण है और उत्पादका कारण है। वहाँ यह पक्ष न रखना चाहिए कि पदार्थका विनाश तो अहेतुक है और परमार्थका उत्पाद किया है. कारण कलापने जो बात प्रतीतिमें आ रही है, जिसे सभी लोग स्वीकार कर रहे हैं उसके विरुद्ध बात बनाना और युक्तियाँ गढना अनुभवमें उतर नही सकता है। अतः सीधा यही मानना चाहिए कि विनाश भी सहेतुक और उत्पाद भी सहैतुक है और ऐसा विनाश, उत्पाद ध्रौव्य वस्तुका स्वरूप है, और वह वस्तु वचनोंके द्वारा वक्तव्य है।

उत्पादको सहेतुक और विनाशको अहेतुक कहने व लोंकी न्याय मार्ग विरुद्धता—शङ्काकार कहता है कि स्वरसतः उत्पाद उत्पन्न होता है ऐसा प्रसंग अभी बताया गया है सो स्वरसतः उत्पन्न भी हो उत्पाद तो भी यह उत्पाद इसका है, ऐसा व्यपदेश इस कारणसे होता है कि वह उत्पाद कारणके अनन्तर व हेतुके अनन्तर होने के कारण जैसे कि कपालका है उत्पाद और घट है कारण तथा मुद्गरादि है हेतु तो कपाल घटके बाद ही होता है इस कारण व मुद्गरादि व्यापारके अनन्तर ही कपाल होते हैं इस कारण वहाँ यह व्यपदेश बन जाता है कि मुद्गर आदिकके द्वारा यह कपाल उत्पन्न हुआ है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो विनाशके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। विनाश भी इसी हेतुके अनन्तर हुआ है। हेतु हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मुद्‌गर आदिक । मुद्‌गर आदिकके व्यापारके बाद यह विनाश हुआ है । अतः वहाँ भी यह व्यपदेश हो जाना चाहिए कि यह विनाश घटका है। जैसे कार्यक्षणमें यह बातलगा दी जाती है कि खपरियाँ हुई हैं मुद्‌गर आदिक हेतुके व्यापारके बाद अतएव उसमें यह व्यपदेश होता है कि मुद्‌गर आदिकके द्वारा कपाल (खपरियाँ) किया गया है, इसी प्रकार मुद्‌गर आदिक हेत्वन्तर हुआ है यह विनाश इस कारणसे विनाशमें ही यही व्यपदेश बन जायगा कि मुद्‌गर आदिकके द्वारा घटका प्रध्वंस किया गया है । यदि ऐसा नहीं मानते हो तब फिर कार्यके सम्बन्धमें भी मत कहो कि कपाल कार्य मुद्‌गर आदिकके द्वारा हुए हैं । यदि विनाशको सहेतुक नहीं माना जाता तो कार्य भी सहेतुक न बन सकेगा । शंकाकार कहता है कि हमने तो वास्तवमें नाश और उत्पाद दोनोंको ही अहेतुक माना है । न तो उत्पाद हेतुवों द्वारा होता है और न नाश हेतुवों द्वारा होता है परन्तु जाननहारके अभिप्रायके वशसे हम उत्पादको सहेतुक कह देते हैं । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि परमार्थतः यदि विनाशको अहेतुक माना जा रहा है तो देखिये ! प्रतिपत्ताकी अर्थात् समझनहार अथवा जाननहारके अभिप्रायकी अविशेषता दोदों जगह है, क्योंकि उत्पादके सम्बन्धमें भी कुछ जिज्ञासा समझनहारको होती है और विनाशके सम्बन्धमें भी होती है । तो अभिप्रायकी तो दोनों जगह समानता है । अब वहाँ जो स्वतः विनाश मानने वाला यह दार्शनिक है वह यदि उत्पादको तो सहेतक कहे और विनाशको अहेतुक कहे तो वह अपनेको न्याय मार्गपर नहीं ले जा रहा है । वह न्याय मार्गके विरुद्ध है ।

निरन्वय विनाशवादमें सदृश और विरूपकार्यके विवेकज्ञानकी असिद्धि
और भी देखिये ! निरन्वय विनाश मानने वालेके यहाँ यह भी विवेक नहीं बन सकता कि यह विरूप कार्य है और यह सदृश कार्य माना गया है और विरूप कार्य माना जाने का कारण यह है कि क्षणिकवादमें कारणका कथञ्चित् भी अन्वय नहीं माना है, अर्थात द्रव्यकी अपेक्षासे अन्वय जो सिद्ध है उसको नहीं माना गया, उनके सिद्धान्तमें प्रतिक्षण होने वाले पदार्थ परिपूर्ण हैं और अपने आपके अन्वयके बिना हैं तो अन्वय न माननेपर सदृश कार्य की सिद्धि नहीं की जा सकती है । जब द्रव्यापेक्षया पदार्थ पहिले क्षणमें भी है और उत्तरक्षणमें भी हो तब तो वहाँ सदृश कार्यकी बात कही जा सकती है । किन्तु जहाँ अन्वय किसी भी प्रकार नहीं है, वहाँ ऐदृश कार्यका ज्ञान नहीं बताया जा सकता । ऐसी स्तिथिमें जाननहारके अभिप्रायके कारण सदृश और विरुद्ध कार्यकी कल्पना कर ली जाय तो ऐसी कल्पना करने वाला दार्शनिक जाननहारके अभिप्रायके कारण विनाशको सहेतुक क्यों नहीं मान लेता है ।

प्रतिपत्ति व अभिधानका भेद होनेपर ग्राह्यग्राहककाकारकी तरह नाश व उत्पादमें तादात्म्य सम्बन्ध—और, भी देखिये ! जो पूर्वक्षण उत्तरक्षण होते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनमें पूर्वक्षणका नाश और उत्तरक्षणका उत्पाद कहा जाता है। सो वह नाश और उत्पाद एक साथ स्वयं ही पृथग्भूत नहीं है। और न वह अपने आश्रयसे पृथग्भूत है। नाशका आश्रय है घट उत्पादका आश्रय है कपाल, तो यह नाश और उत्पाद अपने आश्रयसे पृथक्भूत नहीं है जिससे कि ऐसा भेद बताया जा सके कि उत्पाद तो सहेतुक है और विनाश अहेतुक है, यह विभाग नहीं किया जा सकता है। यद्यपि उस जाननहारके अभिप्रायमें भेद पड़ा हुआ होनेपर इतनी तरहसे वहाँ यह भेद न किया जा सकेगा कि उत्पाद तो सहेतुक बने और विनाश अहेतुक बने जैसे कि एक ज्ञान ग्राह्यकाकारसे तन्मय है, अब उस सम्बन्धमें जाननहारकी प्रतिपत्तिमें भी भेद है अर्थात् उसकी समझमें भी भेद है कि यह तो है ग्राह्याकार और यह है ग्राहकाकार, ऐसा जाननेका भी भेद है, और शब्दोंका भी भेद है। तो इस तरह उत्पत्ति और शब्द दोनोंका भेद होनेपर भी उस ज्ञानमें स्वभावका प्रतिबन्ध है अर्थात् ग्राह्याकारका तादात्म्य है। तो जैसे एक ज्ञानमें ग्राह्याकार और ग्राहकाकारकी जानकारी और शब्द ये भिन्न होनेपर भी जैसे वहाँ तादात्म्य सम्बन्ध है उस ही प्रकार नाश और उत्पादके लक्षणकी जानकारी और शब्दोंका भेद होनेपर भी नाश और उत्पादका तादात्म्य सम्बन्ध है अर्थात् जो ही उत्तरक्षणका उत्पाद है वही पूर्वक्षणका नाश कहलाता है। तो नाश और उत्पादमें कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है।

नाश व उत्पादमें तादात्म्य सम्बन्ध न मानकर कार्यकारण सम्बन्ध माननेकी असङ्गतता—कार्यकारणभाव सम्बन्ध भी घटके नाश और कपालके उत्पादमें कहा नहीं जा सकता। तादात्म्य सम्बन्धके सिवाय अन्य किसी प्रकारका सम्बन्ध वहाँ सिद्ध नहीं किया जा सकता। नाश और उत्पादमें कार्य कारण सम्बन्ध यों न कहा जा सकेगा कि वे नाश और उत्पाद एक समयमें हुए हैं। जिस ही समय कपालकी उत्पत्ति हुई है उस ही समयमें घटका नाश हुआ है और स्वयं क्षणिकवादियोंने यह बात मानी है कि नाश और उत्पाद एक साथ ही होते हैं। जैसे कि तराजूके दो पलड़ोंका समान रहना एक साथ है इसी प्रकार नाश और उत्पाद भी एक साथ हैं ऐसा स्वयं क्षणिकवादके सिद्धान्तमें वचन है। अतः नाश और उत्पादमें कार्यकारण सम्बन्ध नहीं कहा जा सकता। कोई यह सोचे कि नाश और उत्पादका परस्परमें कार्यकारण सम्बन्ध नहीं है तो न हो पर नाशका आश्रय है घट सो नाश और घटमें कार्यकारण सम्बन्ध मान लिया जायगा अथवा उत्पादका आश्रय है कपाल ! जिस परिणतिकी व्यक्ति हुई है उस परिणतिका आश्रय वह है सो उत्पादका कपालके साथ कार्यकारणभाव मान लिया जायगा। सो इस तरह नाश और उत्पादका अपने आश्रयके साथ कार्यकारणभाव भी नहीं माना जा सकता। क्योंकि यदि उन पूर्वक्षण उत्तर क्षणोंका नाश और उत्पादका कार्यकारणभाव माना जाय तो कार्यकारणभाव होते हैं भिन्न-भिन्न समयमें और होते हैं वे जुदे-जुदे पदार्थ। जैसे कि घट पूर्वक्षण है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कपाल उत्तरक्षण है, तो इसे क्षणिकवादमें भिन्न भिन्न पदार्थ माना है । इस तरह यदि नाशका कारण घट माना जाय तो घट भिन्न पदार्थ हो जायगा और नाश भिन्न पदार्थ हो जायगा, फिर उनका सम्बन्ध क्या रहेगा ? इसी प्रकार उत्पादका कारण माना जाय कपाल तो कपाल भिन्न हो जायगा और उत्पाद भिन्न हो जायगा तब उत्पाद घटका है, यह कैसे समझा जा सकेगा ?

नाश और उत्पादमें विशेषण विशेष्य भावकी असङ्गतताका हेतु—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये ! नाश और उत्पाद घट और कपालके धर्म हैं याने घटका धर्म है नाश और कपालका धर्म है उत्पाद, इस कारण इसमें विशेषण विशेष्य भाव बन जायगा । कपालका उत्पाद घटका विनाश कहा, तो यहाँ घट विशेषण हो गया व विशेष्य हो गया विनाश तथा कपालका उत्पाद हुआ तो कपाल विशेषण बन गया । इस तरह नाश उत्पादका घट कपालके साथ विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध बन जायगा । इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तुम्हारे सिद्धान्तमें यों सङ्गत नहीं है, यह तो विशेषवादकी बात बन जायगी । वैशेषिक सिद्धान्तमें ऐसा माना गया है कि क्रिया जुदा वस्तु है और द्रव्य जुदा वस्तु है । जो कुछ भी शब्द द्वारा कोई बात समझमें आती है तो वह जुदा ही पदार्थ है, ऐसा वैशेषिक सिद्धान्तमें माना गया है । यदि क्षणिकवादी यह कहे कि वह तो कल्पनासे आरोपित मान लिया जायगा कि घटका विनाश और कपालका उत्पाद सो यह विशेषण वशेष्यभाव केवल कल्पनासे मान लिया जायगा । तब वैशेषिक द्वारा माने गये स्वाश्रयसे नाशोत्पादकी अर्थान्तरता न रहेगी और तब वैशेशिक मतकी बात न रहेगी । तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि इससे तो फिर यही सिद्ध हुआ कि पूर्वक्षणका विनाश और उत्तरक्षणका होना बस इस हीका नाम उसका उत्पाद है अर्थात् उत्पादमें यही बात पायी गई कि वह उत्पाद पूर्वक्षणके विनाश स्वभावरूप है और उत्तरक्षणके सद्भावरूप है, इसीका नाम उत्पाद हुआ, और ऐसा सिद्ध होनेमें यह बात आयगी कि वहाँ स्वभावका प्रतिबन्ध बन गया अर्थात् नाश और उत्पादका कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध बन गया । यों नाश और उत्पाद एक ही बात कहलाने लगेगी ।

नाश व उत्पादमें तादात्म्य सम्बन्ध मान लेनेपर भी प्रतिपत्तिभेद व शब्दभेदकी संभवता—नाश व उत्पादमें तादात्म्य सम्बन्ध मान लेनेपर यह विरोध नहीं आता कि फिर तो जानकारी और शब्द ये भिन्न न रहना चाहिए । शंकाकार यदि कहे कि वहाँ तादात्म्य सम्बन्ध बन गया नाश और उत्पादमें तब फिर यह नाश है और यह उत्पाद है इस प्रकारकी जानकारी और शब्दका भेद फिर न रहना चाहिए सो बात यह है कि तादात्म्य सम्बन्ध होनेपर भी नाश और उत्पादमें जानकारी और शब्दका भेद विरुद्ध नहीं होता, वह भी सिद्ध हो जाता, जैसे कि एक ज्ञानमें एकपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेपर भी ग्राह्यकार और ग्राहककारका तादात्म्य होनेपर भी यह जानकारी तो होती ही है कि यह ग्राह्याकार है और यह ग्राहकाकार है और इसी प्रकार नाश व उत्पाद इन शब्दोंके द्वारा भी वे अलग अलग कहे जाते हैं इस कारण नाश और उत्पाद में अभेद ही है तथा जैसे संज्ञा और छंदमें अथवा मति और स्मृतिमें भेद है, क्षणिक वादमें संज्ञा और छंद माना गया है। संज्ञाका अर्थ है प्रत्यभिज्ञान और छंदका अर्थ है इच्छा। जैसे किसी कामी पुरुषने स्त्रीको निरखा तो निरखते ही उसे प्रत्यभिज्ञान हुआ कि यह वही स्त्री है, पर तत्काल ही इच्छा होनेके कारण अब इच्छाके भावमें आ गया तो प्रत्यभिज्ञान नष्ट हो गया। तो प्रत्यभिज्ञानका विनाश इस छंदके द्वारा हुआ है, हो गया। तो जैसे संज्ञा और छंदमें भेद होनेपर भी वहाँ यह नहीं कहा जा सकता है कि संज्ञाके विनाशका तो हेतु नहीं है और छन्दके उत्पादका हेतु है इसी प्रकार नाश और उत्पाद एक साथ होनेपर भी वहां यह भेद नहीं डाला जा सकता है कि कपालके उत्पादका तो हेतु होता है और नाशका कोई हेतु नहीं होता।

एक अधिकरणमें सहभाव होनेसे रसरूपादिकी तरह कार्योत्पाद व कारण विनाश दोनोंकी सहेतुकता—जैसे कि किसी फलमें रूप, रस आदिक अनेक क्षण हैं तो वहाँ कार्यरूप, कार्यरस आदिकके कारण सभी माने गए हैं। एक साथ होनेके कारण वहाँ यह बात विरोधरूप न कही जायगी कि उनमेंसे एकका तो कारण हो एकका कारण न हो। तो इसी प्रकार समान कालमें होने वाले वे नाश और उत्पाद जो कि दृष्टान्तमें घट और कपालके आश्रय कहे गए हैं उन सबका सहकारी कारण मुदगर आदिक है। वहाँ यह भेद न किया जा सकेगा कि मुद्गर आदिक कपाल के उत्पादके ही कारण हुए और घटके विनाशके कारण हुए। जैसे कि कार्यरूपकी कार्यरसकी सबकी बात एक सामग्रीके आधीन है। तो जैसे उनका जो कारण रूपादिकका समूह है वहाँ यह व्यवस्था बनायी गई है कि रूपसे तो रूप उत्पन्न हुआ रससे रस उत्पन्न हुआ। तो एक सामग्रीके आधीन सब कुछ होनेपर भी जैसे वहाँ उन रूप रस आदिकका कारण समूह एक है इसी प्रकार नाश और उत्पाद ये दोनों मुद्गर आदिक एक सामग्रीके आधीन हैं? मुद्गर आदिकके व्यापारसे ही नाश हुआ है और कपालका उत्पाद हुआ है। अतएव यह मानना होगा कि मुद्गर आदिकके द्वारा नाश हुआ और उत्पाद हुआ, तब विनाशको अहेतुक कैसे कहा जा सकता है? जैसे उत्पाद सहेतुक है उसी प्रकार विनाश भी सहेतुक है और इस ही कारण यह अनुमान प्रयोग समीचीन बनता है कि कार्य कारणका उत्पाद विनाश सहेतुक और अहेतुक नहीं कहा जा सकता क्योंकि सहभावी होनेसे। जैसे कि एक ही साथ रस रूप आदिक हैं तो उनके कारणका यों भेद नहीं किया जा सकता कि रसका ही कोई कारण होता है और रूपादिकका कारण नहीं होता है। क्योंकि रस, रूप जब दोनों एक सामग्रीके आधीन हैं तो उनमें एकको सहेतुक कहना और एकको अहेतुक कहना यह युक्त नहीं है। इसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकार नाश और उत्पादरूप एक साथ हुए हैं तो उनमें उत्पादको मुदगर आदिकसे हुआ यों कहना और नाशको यह स्वयं हुआ, मुद्गर आदिकसे नहीं हुआ यह कहना युक्त नहीं है।

कार्य कारणका उत्पाद विनाश सहेतुक अहेतुक नहीं है सहभाव होनेसे रसादिकी तरह इस अनुमानकी दृष्टान्तमें साध्यविकलताका व साधन-विकलताका अभाव होनेसे समीचीनता—यहाँ यह वर्णन चल रहा है कि उत्पाद और विनाश दोनों ही सहेतुक होते हैं। इसके विरोधमें क्षणिकवादी शङ्काकारका यह कहना है कि विनाश तो अहेतुक होता है, किन्तु उत्पाद सहेतुक होता है। यहाँ विनाश तो होता है कारणका और उत्पाद होता है कार्यका अर्थात् पूर्वक्षण तो कारण है, उसका विनाश होते ही उत्तरक्षणका उत्पाद होता है। तो उत्तरक्षण कार्य है और पूर्वक्षण कारण है, जिसे उपादान उपादेय कह सकते हैं। तो उन क्षणिकवादियोंके प्रति यहाँ अनुमान प्रयोग किया जा रहा है कि कार्य कारणका उत्पाद विनाश सहेतुक और अहेतुक नहीं है सहभाव होनेसे रस आदिककी तरह। इस अनुमान प्रयोगमें यह सिद्ध किया जा रहा है कि कार्यका उत्पाद और कारणका विनाश इसमेंसे एक सहेतुक हो ऐसा नहीं है क्योंकि ये दोनों एक साथ होते हैं रस आदिककी तरह। तो इस अनुमान प्रयोगमें जो रूप, रस आदिकका दृष्टान्त दिया गया है उस दृष्टान्तमें न तो साध्यकी शून्यता है और न साधनकी विकलता है अर्थात् इस उदाहरणमें साध्य और साधन दोनों पाये जाते हैं, अतः इस अनुमानका उदाहरण समीचीन है। देखिये! क्षणिकवादमें रसक्षण, रूपक्षण आदिक जितने प्रकारके भाव हैं, गुण हैं उनको अलग अलग क्षण कहकर अलग अलग पदार्थ माना है। तो जैसे किसी आम्रफलमें प्रति-क्षण रस रहता चला जाता है तो वहाँ क्षणिकवादमें यह कल्पना है कि वे प्रतिसमयके रस जुदे जुदे ही पदार्थ हैं। पूर्वसे उत्तरका अन्वय नहीं है उसी प्रकार उस ही आम्रफलमें जो प्रतिक्षण रूप चलते रहते हैं वे सभी प्रतिसमयके रूप अलग अलग पदार्थ हैं, उनका भी एक दूसरेसे अन्वय नहीं है। तो यहाँ यह विचार कीजिए कि एक आम्रफलमें जो रूप रस आदिक हैं तो वे सभी रूप रस कारणभूत हैं और उत्तरक्षणके रूप रस कार्यरूप हैं। तो अब यहाँ ये दोनों एक साथ रह रहे हैं तो सहभाव होनेसे वहाँ हेतु है वह और रूपादिक कार्योंका वह हेतु नहीं है वहाँ, ऐसी प्रतीति होती भी नहीं है। जब रूप और रस दोनों एक साथ रह रहे हैं और उनके आधारभूत कारण कलाप एक हैं अर्थात् उस एक आम्रफलमें ही है तब कार्य रसका ही तो वह कारणरस आदिक कलाप हेतु हो और रूपादिकका हेतु न हो ऐसी प्रतीति नहीं होती, इस कारण इस दृष्टांतमें साध्य पाया ही जा रहा है, अनुमान प्रयोगने साध्य यह बताया है कि एक सहेतुक हो, एक अहेतुक हो ऐसा नहीं होता, सो यह बात इस रस आदिकके दृष्टांतमें पायी ही जा रही है। अब विचारिये कि दृष्टांतमें साधन विकलता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी नहीं है। इस अनुमानमें साधन बताया गया है सहभाव होनेसे, सो सभी लोग समझ रहे हैं कि रूप, रस आदिक सब एक ही साथ रह रहे हैं तो इसमें असहभाव न होनेके कारण साधनकी भी सिद्धि हो जाती है। तब यह उदाहरण प्रस्तुत अनुमानको सिद्ध करनेमें समर्थ है।

सहभावत् इस हेतुकी पुरुष व बुद्धिके साथ व्यभिचारीताका अभाव—यहाँ शङ्काकार कहता है कि "सहभाव होनेसे" यह हेतु पुरुष और बुद्धिके साथ व्यभिचारी हो जाता है। अर्थात् पुरुष और बुद्धि ये दोनों पाये जाते तो हैं एक साथ, किन्तु इनमेंसे बुद्धि तो सहेतुक है और पुरुष अहेतुक है। तब यह साध्य कैसे सिद्ध होगा कि जो एक साथ रहते हों उनमें एक सहेतुक और एक अहेतुक हो ऐसा न बनेगा। देखिये पुरुष और बुद्धि एक साथ रह रहे हैं फिर भी इनमें पुरुष तो है अहेतुक और बुद्धि है सहेतुक अथवा कोई एक अहेतुक हो गया कोई एक सहेतुक हो गया तब साध्य तो न रहा, तब हेतु अनेकान्त दोषसे दूषित हो गया। शङ्काके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें पुरुषकी असिद्धि है, क्योंकि वहाँ अन्वय ही नहीं माना, कोई एक नित्य पदार्थ नहीं माना तो पुरुष कैसे सिद्ध होगा दूसरी बात यह है कि पुरुषको जो लोग मानते हैं, स्याद्वादी मानते हैं तो उनके सिद्धान्तमें पुरुष भी सहेतुक है, जैसे कि बुद्धि सहेतुक है पदार्थ दृष्टिमें हो, ज्ञानावरण का क्षयोपशम हो, इन्द्रियकी समर्थता हो, प्रकरण भी हो तो वहाँ उस विषयमें बुद्धि चलती है। तो वह बुद्धि सहेतुक बन गई। इस प्रकारसे पर्याय दृष्टिसे यह पुरुष भी सहेतुक है अर्थात् शाश्वत रहने वाले जीव किसी भवको छोड़कर पुरुषभवमें आया तो वह पुरुष पर्याय ही तो हुई और वह पुरुष नष्ट हो जाने वाला है। उस पुरुषकी उत्पत्ति भी हुई है तब उस प्रकारके कर्मका उदय और वाह्य सन्निधान माता पिता आदिकका संयोग ये सब पुरुषकी उत्पत्तिमें कारण हैं। तब पुरुष भी सहेतुक हो गया और बुद्धि भी सहेतुक हो गयी। तो एक साथ जब ये दोनों पाये जा रहे हैं तो दोनों ही सहेतुक हो गए इस कारण इस हेतुमें अनेकान्त दोष नहीं आता है। तीसरी बात यह समझिये कि जैसे पुरुष द्रव्यार्थिक दृष्टिसे अहेतुक है अर्थात् वह आत्मा शाश्वत् है अपने आप सत् है अतः वह अहेतुक है, सदा रहने वाला है इसी प्रकार द्रव्यार्थिक दृष्टिसे बुद्धि भी अहेतुक है। बुद्धि क्या है ? ज्ञान और ज्ञान स्वभाव, ये सदाकाल रहने वाले हैं। ज्ञान स्वभावको किसीने उत्पन्न नहीं किया है। बुद्धि इस ज्ञान स्वभाव में तादात्म्य रख रही है। तो उस बुद्धिके आश्रयभूत उस ज्ञानस्वभावको देखें अथवा उस बुद्धिको द्रव्यार्थिक दृष्टिसे देखें तो वह भी अहेतुक सिद्ध होता है इस कारण भी पुरुष और बुद्धिसे सहभाव हेतुकी व्यभिचारिता नहीं होती है।

'कारणानन्तरं सहभावात्" यों सविशेषण हेतुमें व्यभिचारका स्पष्ट

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभाव—अब सहभावात् इस हेतुकी अव्यभिचारिताको समझनेके लिए इस तरह निरखिये कि इस हेतुको कुछ विशेषण सहित प्रयोग करें कि कार्यकारणका उत्पाद विनाश सहेतुक अहेतुक नहीं है, क्योंकि कारणोंके अनन्तर वहाँ सहभाव पाया जाता है, तो यहाँ सहभाव हेतुके साथ कारणान्तर गुण विशेषण लगा देनेसे इस हेतुके व्यभिचार नहीं आते। यह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि देखा जाता है कि मुद्गर आदिक के व्यापारके बाद जैसे खपरियोंका उत्पाद होता है उसी प्रकार कारणरूप घटका भ विनाश देखा जाता है और दोनों ही तरहके व्यवहार पाये जाते हैं कि घट नष्ट हुआ और खपरियाँ उत्पन्न हुई। तब कार्यके उत्पादकी तरह कारणके विनाशको भी सहेतुक ही मानना चाहिए।

उत्पादकी तरह कारणकी विनाशके प्रति अकिञ्चित्करताका अभाव

अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि देखिये! मुद्गर आदिक हेतुओंसे उस कारणक्षणका अर्थात् घटका विनाशरूप कुछ नहीं होता है, किन्तु वह घट तो योंही स्वयं नष्ट होता ही है, तब उत्पादमें तो हेतुका व्यापार है परन्तु विनाशमें हेतुका व्यापार नहीं है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस प्रकार तो हम यह भी कह सकते हैं कि मुद्गर आदिक कारणसे कार्य कुछ नहीं होता है। अर्थात् मुद्गर आदिक कारणसे खपरियों की कुछ भी बात नहीं होती है, किन्तु वे खपरियाँ स्वयमेव ही उत्पन्न होती हैं। यह कथन उत्पादके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है तब जैसे विनाशको अहेतुक मानते हैं क्षणिकवादी जन उसी प्रकार उत्पाद भी अहेतुक सिद्ध हो जायगा, किन्तु उत्पादको अहेतुक क्षणिकवादी मानते नहीं हैं और वास्तविकता यह है कि कारण कलापसे विनाश और उत्पाद दोनों ही हुआ करते हैं, इस कारण यह स्वीकार करना चाहिए कि यह विनाशहेतु भावको अभावरूप करता है याने वह मुद्गर उस घट भावको घटाभावरूप करता है, भावको अभाव कर देना यही उसका कार्य है तब कारण विनाश के प्रति अकिञ्चितकर नहीं है। जैसे कार्य उत्पत्तिका कारण अभावका भावरूप कर देता है और इस कारणसे उसे अकिञ्चितकर नहीं माना है क्षणिकवाद सिद्धान्तने मुद्गर आदिक हेतु खपरियोंका उत्पाद करते हैं, तो क्या किया कि खपरियोंका यदि अभाव था, पर्यायरूपसे खपरियाँ अविद्यमान थीं, उनको विद्यमान कर दिया तो जैसे यह माना जाता है कि हेतु अभावको भावरूप कर देते हैं इस कारण अकिञ्चितकर नहीं है इसी प्रकार विनाशका हेतु भी अर्थात् वह मुद्गर भावको अभावरूप कर देता है। भाव है घटका, वह विद्यमान था, उसे अभावरूपकर दिया। अर्थात् घटका अभाव हो गया। इस तरह हेतु कारणके विनाशका भी कारण है और कार्यके उत्पाद का भी कारण है।

उत्पादहेतु द्वारा अभावको भावरूप किया जाना व विनाश हेतु द्वारा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भावको अभावरूप किया जाना न माननेपर विडम्बनाका निदर्शन—यदि कार्य उत्पत्तिका कारणभूत पदार्थ मुदगर आदिकको भावरूप नहीं करता है याने उस मुदगरके द्वारा अभाव भावरूप नहीं बनता याने खपरियाँ थी नहीं, सो उनका अभाव था, एक ही भावरूप बनाया है । सो अब यदि हेतु अभावको भावरूप न करे तो इस का तात्पर्य यह होगा कि हेतुभूत मुदगर आदिकने पहिले विद्यमान घटका ही विनाश किया है तो इसमें तो कियेको ही किया गया है ! कियेको करना क्या ? कियेके करने का आयोग है तब यह उत्पादके लिए अकिञ्चित्कर हो गया, क्योंकि सर्वथा भावको ही भावरूप बनानेमें व्यापारका कुछ प्रयोजन न रहा, व्यापारकी निष्फलता ही रही यह विडम्बना बनी । सो यों मानना ही पड़ेगा कि कार्योत्पत्तिका हेतुभूत पदार्थ अभाव को भावरूप करता है । इसी प्रकार विनाशके सम्बन्धमें भी सोचिये कि विनाशके हेतुभूत पदार्थ भावको अभावरूप कर देता है । यदि विनाश हेतुभूत पदार्थ भावको अभावरूप न करे तो इसका अर्थ होगा कि भावरूप ही रहा तो विनाश क्या ? भाव को अभावरूप न करे याने अभावको ही अभावरूप करे तो अभावका अभाव बन गया सो मानना चाहिए कि उस समय जैसे अभाव भावरूप बना ऐसे ही भाव अभावरूप बना ।

विनाशको अहेतुक सिद्ध करनेके लिये तदनरकरणादि विकल्पोंमें शङ्काकारकी शङ्का व उसका समाधान—शङ्काकार कहता है कि उत्पादकारणों की विफलता क्यों बताते हो, क्योंकि पहिले विद्यमान कपालरूप भावका मुदगरादि कारणसे निष्पादन हुआ है यों ही हेतुओंसे विनाशको मानोगे कि मुदगरादिने घटका विनाश किया, तो यह बतलावो कि वह विनाश घटसे भिन्न किया गया या अभिन्न किया गया ? मुद्गरके व्यापारने यदि घटका विनाश किया है तो वह विनाश घटसे भिन्न किया गया या घटसे अभिन्नभूत किया गया? यदि कहोगे कि विनाशके कारण-भूत मुद्गर आदिकने घटसे अभिन्न विनाशको किया है याने मुद्गर मारनेपर जो घट का विनाश हुआ है वह विनाश घटसे अभिन्न है । तो देखिये कि वह विनाश जब घट से अभिन्न है तो विनाशको किया मायने घटको ही किया तब विनाश करनेमें मुद्गर आदिक अकिञ्चितकर ही तो रहे । यदि कहो कि वह विनाश घटसे भिन्न है, जिसको मुद्गरने किया तो मुद्गरने विनाश ही तो किया और वह विनाश घटसे जुदा है तब घटपर तो कोई आँच नहीं आयी, फिर तो वहाँ घटकी उपलब्धि हो जाना चाहिए सो होती नहीं है । इससे सिद्ध है कि विनाशका कारण कोई नहीं है । किन्तु विनाश स्वयं स्वभावतः होता है । इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि इस प्रकारके विकल्प तो कार्यके उत्पादके सम्बन्धमें भी उठाये जा सकते हैं । शङ्काकार बतायेकी कार्यकी उत्पत्तिके हेतुभूत मुद्गरने जो खपरियोंका उत्पाद किया है सो वे यह बतायें कि उस भावसे अभिन्न उत्पाद किया है या भिन्न उत्पाद किया है ? यदि उन खपरियोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभिन्न है वह उत्पाद, जिसको मुद्गरने किया तब जो भाव था ही पहिलेसे सत्रूप उसके करनेमें फिर उन कारणोंकी किञ्चितकरता कुछ न रही, क्योंकि जो सद्भूत है उसका करना ही क्या है ? यदि कहो कि सर्वथा असत्रूप भावसे अभिन्न है वह उत्पाद, जिसको मुद्गर आदिकने किया। तो जो असत्से अभिन्न है तो उत्पादको किया मायने असत्को किया तो असत्का क्या करना होता है ? इस तरह भी उत्पाद के कारण अकिञ्चितकर ही रहे। जैसे कोई पुरुष कहे कि आकाशके पुष्पकी सुगंध तो जब आकाश पुष्प ही नहीं है तो सुगन्ध किसकी कही जाय ? फिर वहाँ किया कुछ नहीं गया। यदि शङ्काकार यह कहे कि सत् और असत्से भिन्न ही उत्पाद किया गया अर्थात् कार्यकी उत्पत्तिके कारणभूत पुद्गलने जो खपरियोंका उत्पाद किया वे खपरियाँ न सत् हैं न असत् हैं, तो इसके मायने यह हुआ कि न तो सत् किया न असत् किया। उत्पाद तो सत् और असत् दोनोंसे भिन्न ही रहा। तो इस ही प्रकरणसे अर्थात् जब नाश और उत्पाद अपने आश्रयसे भिन्न और अभिन्न किए हैं ऐसा माननेपर यह दूषण आयगा तो इन दूषणोंके अनुसार यह निर्णय समझ लेना चाहिए कि पहिले सत् नहीं है, ऐसा कपालसे भिन्न अथवा अभिन्न उत्पाद हेतुके द्वारा किया जाय, माना जाय तो वह अकिञ्चितकर कहलाता है, क्योंकि जो प्राक् असत् है वह उससे अभिन्न है तो उसमें सत्त्व आ ही नहीं सकता। जैसे आकाश पुष्पसे सुगन्धका सत्त्व नहीं आ सकता है और यदि उस प्राक् असत्से अन्य ही सत् किया गया तब कारणकी व्यर्थता है इस कारण यह मान लेना चाहिए कि यदि हेतु समागम विनाशके लिए नहीं होते हैं तो वे उत्पादके लिए भी नहीं हैं। याने मुदगरका व्यापार यदि विनाशके लिए नहीं है तब उत्पादके लिए भी नहीं है और मुदगर आदिकके व्यापारसे यदि खपरियोंका उत्पाद माना जाता है तब मुदगर आदिकके व्यापारसे घटका विनाश भी मान लेना चाहिए, क्योंकि नाश और उत्पादके सम्बन्धमें जो कुछ कहा जायगा उसमें कोई विशेषता नहीं आती है। जो ही बात उत्पादके सम्बन्धमें घटित होती है वही बात विनाशके सम्बन्ध में घटित होती है, क्योंकि नाश और उत्पादका तादात्म्य सम्बन्ध है।

हेतुसमागमसे परमाणुक्षणोंके उत्पन्न किये जानेकी असिद्धि—इस प्रकरणमें क्षणिकवादियोंने यह बताया था कि साधनोंका समागम विरूप (विशदृश) कार्यके उत्पादके लिए हुआ करता है, तो ऐसा कथन करनेपर यह प्रश्न होना अवश्यम्भावी है कि क्षणिकवादियोंके यहाँ जो हेतुसमागमसे पदार्थकी उत्पत्ति मानी गई है तो हेतुसमागमसे कौनसे पदार्थ उत्पन्न होते हैं ? क्या परमाणुक्षण उत्पन्न होते हैं या स्कंधसंततियाँ उत्पन्न होती हैं ? दीखनेमें जो कुछ आ रहा है वे सब तो स्कंध हैं ही और कुछ स्कंध होते हैं जो दीखनेमें नहीं आते, किन्तु चाहे अदृश्य भी हों तो भी स्कंध जितने भी होते हैं वे अनेक परमाणुओंके समूह ही हैं। परमाणु हैं निरंश एक प्रदेशी जिनके समुदायसे स्कंध हुए हैं। तो यहाँ पूछा जा रहा है कि क्या परमाणु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षण उत्पन्न होते हैं या स्कंध संततियाँ ? यदि कहा जाय कि परमाणु क्षण उत्पन्न होते हैं तो देखिये ! परमाणुक्षण तो निरंश व क्षणिक माने गये है शङ्काकारके सिद्धान्तमें सो जैसे इन परमाणुओंमें स्थाप्य स्थापकभाव नहीं बनता, वविनाश्यनिाशकभाव नहीं बनता, उसी प्रकार हेतुफलभाव भी नहीं बनता, उत्पाद्योत्पादक भाव भी नहीं बनता। परमाणुक्षण निरंश व क्षणिक हैं सो उनमें यह सिद्ध नहीं होसकता कि पूर्वक्षण तो स्थापक हो याने स्थिर करने वाला हो और उत्तरक्षण स्थाप्य हो याने स्थिर किया जाने वाला हो। परमाणुक्षणोंमें यह भी नहीं बन सकता कि पूर्वक्षण विनाशक हो व उत्तरक्षण विनाश्य हो। उत्तरक्षणके होनेपर पूर्वक्षणका सद्भाव ही नहीं है वह विनाश करने वाला कैसे हो सकता है ? परमाणुक्षण निरंश व क्षणिक माने गये हैं क्षणिकवादमें सो वहाँ उत्तरक्षण फल हो (कार्य हो) व पूर्वक्षण हेतु हो (कारण हो) यह भी सिद्ध नहीं हो सकता। फिर तो यह सिद्ध करने बैठना कि कार्य की उत्पत्ति सहेतुक होती है अथवा अहेतुक होती है, यह सब प्रलापमात्र रह जाता है, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि हेतुसमागमसे परमाणुक्षण उत्पन्न होते हैं। अब द्वितीय पक्षकी बात सुनिये ! हेतुसमागमसे स्कंध संततियाँ उत्पन्न होती हैं, इस विकल्पकी भी युक्ति नहीं बनती है। इस वर्णनको सुनिये !

स्कन्धसन्ततयश्चैव संवृतित्वादसंस्कृताः।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषां न स्युः खरविषाणवत् ॥ ५४ ॥

शङ्काकारके सिद्धान्तमें स्कन्धसन्ततियोंको कल्पनारूप माननेके कारण उनकी अपरमार्थता होनेसे उत्पादकी सिद्धिकी असंभवता—क्षणिकवादमें स्कन्धसन्ततियोंको संवृतिसे कल्पित किया गया है। सो स्कंधसन्ततियाँ संवृतिरूप होने से असंस्कृत हैं याने अकार्य हैं, अपरमार्थभूत हैं। और जब स्कन्ध वस्तुत्वसे रहित हैं तब उनमें स्थिति, उत्पत्ति और व्यय हो ही नहीं सकता। जैसे कि खरविषाण अकार्य हैं, अपरमार्थ है याने अवस्तु है सो खरविषाणकी न तो उत्पत्ति है, न व्यय है और न स्थिति है। यहाँ यह अनुमान प्रयोग बन गया कि स्कन्धसंततियाँ असस्कृत हैं संवृति रूप होनेसे खरविषाणकी तरह। शङ्काकार कहता है कि इस अनुमानमें 'संवृतित्वात्' जो हेतु कहा है उसमें अन्यथानुपपत्ति निश्चित् नहीं है, अतः हेतु निर्दोष नहीं है। देखिये ! साध्यके अभावमें साधनके न होनेको ही तो अन्यथानुपपत्ति कहते हैं सो यहाँ ऐसी घटना कहाँ है कि कहीं असंस्कृतत्वका अभाव हो ? सो संवृतिरूपका भी अभाव हो ? इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह शङ्का बिना विचारे ही उपस्थित कर दी गई है। देखिये ! इस अनुमान प्रयोगमें व्यतिरेक व्याप्ति है और इसी कारण अन्यथानुपपत्ति सिद्ध है। रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, विलयस्कन्ध, संज्ञास्कन्ध, संस्कारस्कन्ध। इन सभी स्कन्धोंकी सन्ततियाँ असंस्कृत हैं अपरमार्थ हैं संवृतिपना होनेसे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो असंस्कृत नहीं होता है वह अपरमार्थ नहीं होता याने जो संस्कृत है वह परमार्थसत् है और संवृत्तिरूप भी नहीं है जैसे कि स्वलक्षरण, किंतु स्कन्धसन्ततियाँ परमार्थसत् नहीं हैं। क्षणिकवादमें इन ५ स्कन्धोंका स्वरूप ऐसा बताया गया है कि रूप रस गन्ध स्पर्शके परमाणु रूपस्कन्ध हैं, ये अन्यसे सजातीय व विजातीय सबमें व्यावृत हैं, रहित हैं और परस्पर असम्बद्ध हैं याने स्वयं स्वतन्त्र हैं, निरंश हैं। सुख दुःख आदिक सभी वेदनाओंका जमाव वेदना स्कंध हैं। सविकल्पज्ञान निर्विकल्पज्ञान इन भेदों वाले विज्ञान विज्ञानस्कंध हैं। घट, पट, वृक्ष, देवदत्त आदि नाम संज्ञास्कन्ध कहलाते हैं। ज्ञान, पुण्य व पापकी वासनायें संस्कारस्कन्ध कहलाते हैं। ये सभी स्कन्ध संततियाँ असंस्कृत हैं, परमार्थसत् नहीं हैं। इस प्रकार साध्यके अभावमें साधनका अभाव पाया जाता है। अतः संवृतित्वात् इस हेतुकी अन्यथानुपपत्ति निश्चित् है। खरविषाणादिमें संवृतिरूपता है याने विकल्पमें ही तो कल्पना करके खरविषाण शब्द बोलनेमें आया है सो खरविषाणकी संवृतिरूपता असंस्कृतपनेसे व्याप्त है अतः हेतु निर्दोष है।

सांवृतोंकी स्थितिसंहारस्थितरहितताकी प्रमाणसिद्धता—स्कन्धसंततियाँ सांवृत हैं अतः असंस्कृत हैं इसी कारण ये स्थिति उत्पत्ति व विपत्तिसे रहित हैं अर्थात् उत्पादव्ययध्रौव्यसे रहित है खरविषाणकी तरह। जैसे कि खरका (गधेका) विषाण (सींग) असंस्कृत है, अपरमार्थरूप है सो वहाँ उत्पादव्ययध्रौव्य नहीं है। सो यह निर्णय रखना चाहिए कि जो सांवृत हो, काल्पनिक हो, अपरमार्थरूप हो उसमें स्थिति उत्पाद, व्यय कुछ भी घटित नहीं हो सकता है। फिर स्कन्धसन्ततियोंको अपरमार्थ रूप मानकर उनका उत्पाद बताना आकाशपुष्पमाला पहिननेकी इच्छा करनेकी तरह मूर्खता है। यहाँ अनुमान प्रयोग यह किया गया कि स्कन्धसन्ततियाँ उत्पादव्ययस्थिति से रहित हैं असंस्कृत होनेसे। इस अनुमान प्रयोगमें जो 'असंस्कृतत्वात्' हेतु दिया गया है वह निर्दोष है, क्योंकि उसकी अन्यथानुपपत्ति वादी प्रतिवादी दोनोंके सिद्ध है। प्रतिवादी अथवा शङ्काकार क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें स्वलक्षणको परमार्थभूत (संस्कृत) माना है और एक क्षणभरको स्थिति उत्पत्ति व विनाशसे युक्त माना है। क्षणिकवादियोंके यहाँ क्षणभरको सही माना तो है ही स्थिति उत्पाद व्ययसे सहित स्वलक्षणको। सो प्रकृत अनुमान प्रयोगमें व्यतिरेक व्याप्ति सिद्ध है कि जो स्थित्युत्पत्तिविपत्तिरहित नहीं है अर्थात् स्थित्युत्पत्तिविपत्तिमान है वह असंस्कृत नहीं होता याने संस्कृत ही (परमार्थभूत ही) होता है। अब वादी स्याद्वादियोंके सिद्धान्तमें भी देखिये! कथञ्चित् स्थिति उत्पत्ति व व्ययसे युक्त पदार्थके परमार्थपना सिद्ध ही है। जो लोग सर्वथा स्थितिमान मानते हैं पदार्थको याने वस्तुको सर्वथा अपरिणामी कूटस्थ नित्य मानते हैं उनके सिद्धान्तमें वस्तुत्व ही सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि सर्वथा कूटस्थ नित्य अपरिणामी स्थितिमानके और असंस्कृतके याने जिसमें कुछ संस्कार परिणाम कार्य होता ही नहीं हो उसके वस्तुपनाकी उत्पत्ति नहीं है। इस प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

'असंस्कृतत्वात्' इस हेतुमें प्रबल अन्यथानुपपत्ति है अतः यह हेतु निर्दोष है। यों असं-स्कृत होनेसे स्कन्धसन्ततियाँ परमार्थरूप ही नहीं हैं, कुछ वस्तु ही नहीं हैं तब स्कन्ध सन्ततिका उत्पाद व उसके उत्पादका कारण बताना प्रलापमात्र है।

स्थिति उत्पत्ति विपत्ति, संस्कृति न हो सकनेसे क्षणिकैकान्तका स्पष्ट मिथ्यापन—जब दृश्यमान सभी पदार्थोंको काल्पनिक, असंस्कृत, अपरमार्थरूप मान डाला है तब विनाशहेतुभूत मुदगर आदिको विशदृश कपाल (खपरियाँ) रूप संतान की उत्पत्तिके लिये कारण बतानेका वचन बिलकुल असङ्गत हो जाता है तथा जब रूपादि स्कन्धसंततियोंकी उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती तब उनका विनाश भी असम्भव हो गया। अनुमान प्रमाणसे स्कन्धसन्ततियोंके विनाशकी असम्भवता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। अनुमान प्रयोग है कि स्कन्धसन्ततितीं विनाशरहित हैं स्थित्युत्पत्तिरहित होनेसे। जो विनाशरहित नहीं है अर्थात् विनाशसहित है वह स्थित्युत्पत्तिरहित नहीं होता है जैसे कि स्वलक्षण। किंतु, स्कन्धसन्ततियाँ स्थित्युत्पत्ति सहित नहीं हैं अतः उनका विनाश भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार क्षणिकैकान्तपक्षमें स्कंधों के उत्पाद, व्यय, स्थिति कुछ भी नहीं बन सकता है, जैसे कि खरविषाणमें स्थिति, उत्पत्ति, विपत्ति कुछ भी नहीं हो सकती है। तो यों जब स्कन्धोंका ही अभाव होगया तब विरूप कार्यके उत्पादके लिए हेतुका समागम होता है, यह कहना अपने आप खण्डित हो जाता है। इस कारण क्षणिकैकान्त श्रेयस्कर नहीं है, क्योंकि नित्यैकान्त की तरह क्षणिकैकान्त भी कुछ नहीं है। यों वस्तुका सर्वथा नित्य कहना मिथ्या है। इसी प्रकार सर्वथा क्षणिक कहना भी मिथ्या है।

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्याय विद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ५५ ॥

नित्यत्वादिके विषयमें उभयैकान्त व अवाच्यतैकान्तकी प्रमाणबाधितता
यदि कोई कहे कि केवल नित्यत्वैकान्तमें बाधा आती है और केवल अनित्यत्वैकान्तमें बाधा आती है तो ये दोनों एकान्त नहीं रहो, किंतु उभयैकान्तमें तो कोई बाधा नहीं है इसपर आचार्यदेव कहते हैं कि नित्यत्वैकान्त व अनित्वैकान्त यों उभयैकान्त भी अङ्गीकार करने योग्य नहीं है, क्योंकि इन दोनोंमें विरोध है जैसे कि एक साथ जीवन और मरणका विरोध है। नित्यत्व और अनित्यत्वका तादात्म्य माननेपर या तो नित्यत्व ही रहेगा या अनित्यत्व ही रहेगा। यों उभयैकान्तका एकस्वरूपसे एक पदार्थ में युगपत् होनेका विरोध है। यदि दृष्टिकी अपेक्षासे नित्यत्व व अनित्यत्व एक पदार्थ में माने जावें तब तो सही है, फिर वहाँ कोई एकान्त नहीं रहता। यदि कोई कहे कि यदि नित्यत्व और अनित्वत्वका विरोध है तब तत्त्वको सर्वथा अवाच्य मान लीजिये ! सो भी बात युक्त नहीं है। यदि अवक्तव्यपनेका एकान्त कर लिया जावे तब तो कुछ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी किसी प्रकार कुछ कहा ही नहीं जा सकता। फिर कौन किसे क्या समझायगा वहाँ तो वस्तु अनभिलाप्य है यह भी न कहा जा सकेगा। कोई पुरुष कह तो रहा यह कि वस्तु अवक्तव्य है याने अवक्तव्य है ऐसा कहकर वक्तव्य बना रहा है और अ क्तव्यपनेका एकान्त रटे जा रहा है यह तो स्ववचनबाधित हुआ। जैसे कि कोई कि मैं मौनव्रती हूं सो जब कह ही रहा है वह कुछ तो मौनव्रती कैसा ? सो जैसे क कहे कि मैं मौनव्रती हूं यह वचन जैसे स्ववचनबाधित है, उ ी प्रकार कोई कहे वस्तु अनभिलाप्य है याने वचनसे कहा नहीं जा सकता यह वचन स्ववचनबाधित है।

नित्यत्वाद्यनेकान्तके निराकरणसे नित्यत्वाद्येकान्तकी सिद्धि होने भी इस अनेकान्तस्वरूपका शून्यत्वादि दुराशयनिराकरणार्थ व अनेका प्रतिपत्तिकी दृढताके अर्थ अनेकान्तात्मकताके विवरणका उपक्रम—उ मीमांसासे यह सिद्ध हुआ कि न तो नित्यत्वैकान्त प्रमाणसिद्ध है, न अनित्यत्वैक प्रमाणसिद्ध है, न उभयैकांत प्रमाणसिद्ध है और न अवाच्यतैकांत प्रमाणसिद्ध यों नित्यत्वाद्येकान्तोंका निराकरण हो जानेसे सामर्थ्यवश यह सिद्ध हो ही गया नित्यत्वादिके विषयमें तथ्य अनेकान्त रूपका है। यों वस्तुद्रव्यापेक्षया नित्य है, पर्या पेक्षया अनित्य है, युगपत् दोनों धर्मोंको कहा नहीं जा सकता अतः अवक्तव्य है। तीन स्वतन्त्र धर्म सिद्ध होजानेपर द्विसंयोगी तीन भङ्ग व त्रिसंयोगी एकभङ्ग सि हो जाता है। यों स्याद्वाद विधिसे सप्तभङ्गी न्यायसे वस्तुकी अनेकान्तात्मकता प्र हो जाती है। इतनेपर भी तत्त्वोपप्लववादी आदि दार्शनिकोंके दुराशयको दूर क लिये कथित अनेकांतात्मक वस्तुस्वरूपकी प्रतिपत्ति दृढ करनेके लिये स्या न्याय नुसार नित्यत्वादि अनेकांतरूपको श्रीमत्समन्तभद्राचार्य कारिका द्वा स्पष्ट करते हैं :

नित्यं तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा।
क्षणिकं कालभेदात्ते बुद्ध्यसंचरदोषतः ॥ ५६ ॥

卐

Report any errors at vikasnd@gmail.com